TIGHT BINDING BOOK

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_180289
UNIVERSAL
LIBRARY

OSMANIA UNIVERSITY LIBRARY

Call No. H 83.1 Accession No. P.G.H 3741

Author M34M

Title मार्कण्डेय
माही - 1962

This book should be returned on or before the date last marked below.

लेखक की अन्य पुस्तकें

●

कहानियाँ : १. पान-फूल, २. महुए का पेड़, ३. हंसा जाई अकेला, ४. भूदान, ५. माही ।

एकांकी : पत्थर और परछाइयाँ

उपन्यास : सेमल के फूल

काव्य : सपने तुम्हारे थे

●

वितरक : लोक भारती

१५ ए, महात्मा गाँधी मार्ग इलाहाबाद

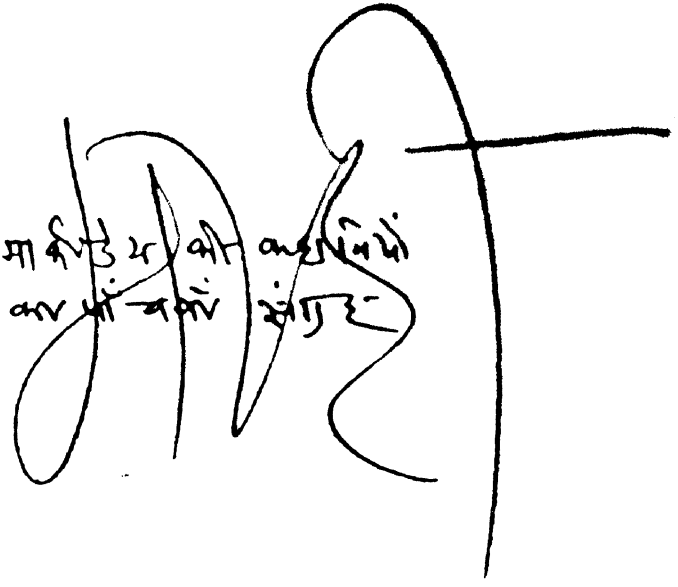

नया साहित्य प्रकाशन
२ डी मिंटो रोड इलाहाबाद

प्रथम संस्करण : मार्च, १९६२

मूल्य : तीन रुपये

मुद्रक : भार्गव प्रेस, इलाहाबाद

प्रकाशक : नया साहित्य प्रकाशन

२ डी, मिन्टो रोड, इलाहाबाद

डा० हरिवंश राय बच्चन को

विज्ञप्ति

●

'भूदान' के बाद लिखी गयी कहानियों में से कुछ कहानियाँ ही इस संग्रह में दी जा रही हैं।

उभरती हुई नयी सच्चाइयों के संदर्भ में रागात्मक सम्बन्धों का जो रूप इन कहानियों में चित्रित है, उसी को दृष्टि में रख कर इन्हें एक जगह प्रकाशित किया जा रहा है। कथा-वस्तु या अन्य प्रतिमानों के प्रति लेखक का न तो कोई आग्रह है, न दावा।

खुशी की बात है कि कहानी पर विचार-विमर्श का तरीका बदल रहा है। सम्पन्न रुचि और गहरी समझ की माँग आज की कहानी करती है तो सिर्फ इस कारण कि बदलते हुए जीवन के यथार्थ के प्रति लोगों को सजग करके, उनके सामने से भ्रम का कुहासा हटाना चाहती है। कहानी को नयी दिशा में विकसित करना तभी सम्भव है जब उसे समसामयिक जीवन के पूरे विकास के संदर्भ में वैज्ञानिक दृष्टि से देखा जाए।

अनुक्रम

●

दूध और दवा : ८

सतह की बातें : २१

माही : ३७

सूर्या : ४५

तारों का गुच्छा : ५६

आदर्शों का नायक : ८३

पक्षाघात : १०५

आवाज़ : ११७

बात बहुत छोटी-सी है, नाजुक और लचीली, पर मौक़ा पाते ही सिर तान लेती है। कोई काम शुरू करने, सोने या पल-भर को आराम से पहले लगता है, कुछ देर इस प्यारी बात के साथ रहना कितना अच्छा है! वैसे मुझे काम करना, करते रहना और करते-करते उसी में खो जाना प्रिय है। इसी की बात भी मैं लोगों से करता हूँ और दूसरों से यही चाहता भी हूँ, पर यह सब तभी होता है, जब मेरे चारों ओर लोग होते हैं। ऐसा नहीं कि लोगों में मेरे बीवी-बच्चे शामिल नहीं हैं। कभी-कभी मुझे ऐसा लगता है, जैसे मैं किसी भीड़ में खड़ा हूँ और असह्य ध्वनियाँ मेरे कानों के पर्दे को छेदने लगती हैं। मैं भाग कर अपने कमरे में घुस जाना चाहता हूँ, पर उसकी बड़ी-बड़ी, आँसुओं में डूबी हुई आँखें....'मैं क्या करूँ इनका? देखते हो, अब मुन्नी भी दूध के लिए ज़िद करती है!'....ऐसा नहीं कि बात मेरे मन में गहरे तक नहीं उतरती, मैं तो मुन्नी को स्कूल जाने के लिए एक छोटी मोटर ख़रीदना चाहता हूँ। हल्के, गुलाबी रंग के फ्राक में लड़खड़ाती, दोड़ती मुन्नी को देखने की मेरी कैसी विचित्र लालसा है, जो कभी पूरी होती ही नहीं दिखाई देती!

सुबह-सुबह बिस्तर से उठते ही वह ज़ोर-ज़ोर से चीख़ने लगती है, जब उसकी माँड़े से सूजी आँखें और भी सूजी होती हैं। कई बार मन में डाक्टर की बात उठती है, डर लगता है, कहीं मुन्नी की माँ की पतली, लम्बी, किश्ती-सी आँखों का पुराना छेद फिर न खुल जाए और सवेरे-सवेरे डूबने-उतराने की मर्मान्तिक पीड़ा में मुझे लिखना-पढ़ना छोड़ कर सड़क का चक्कर

काटना पड़े ! मैं चुपचाप एक निश्चय करके कमरे में चला जाता हूँ.... पहले डाक्टर का इन्तज़ाम करके ही उससे चर्चा करूँगा। पर फिर वही नन्हीं-सी बात !....तुम्हें खोजने लगता हूँ, तुम, जो इस कड़ी ज़मीन की चुभन से पल-भर को उठा कर मुझे एक सुनहले, झिलमिलाते लोक मे खींच ले जाती हो....तुम्हारे सीने के बीच, मुलायम, उजले देह-भाग में मुँह डाल कर पल-भर को साँस लेना कितना अच्छा लगता है मुझे ! शायद तुम्हें याद होगा....बात मकड़ी के जाले की तरह तनने लगती है, लेकिन घंटों और घंटों आँखें बन्द रखने पर भी शिकार कोई नहीं फँसता और मैं बीवियों और मजदूरों के बारे में सोचने लगता हूँ।....आखिर इन दोनों को हरदम शिकायतें क्यों रहती हैं ? क्यों इन दोनों के सीने में खारे पानी का इतना विशाल समुद्र फफाया रहता है, मृत्यु की आखिरी कराह की तरह इस समुद्र की लहरें चीखती है, पर किसी खोखले श्राप की तरह मिथ्या बन कर बिखर जाती हैं। मैं इन विनाशकारी लहरों को दुनिया को निगल जाते देखने के लिए व्याकुल हो उठता हूँ, पर हलकी-सी मुस्कुराहट या वह भी नहीं तो बस मुलायम कलाइयों की पकड़ और उस समय कुछ भी और न सुनने की बात....जाने भी दो !....कमर के नीचे नंगी, खुली....मैं इस असामयिक मृत्यु से बचना चाहता हूँ, पर कोई चारा नहीं। मुनी की माँ के जीने का यही सहारा है और मेरे पास उन मृत्यु की घाटियों के सूनेपन को दूर करने का यही उपाय। वह विश्वास नहीं करती, पर मै सच कहता हूँ कि मुझे इतना बहुत अच्छा लगता है ! इसलिए मैं समझ नहीं पाता कि स्त्रियाँ और मजदूर मालिकों को क्यों ओढ़े हुए है, महज़ इतनी-सी बात के लिए, या मुन्नी की आँखों के माँड़े की दवा या उसके दूध के लिए !

....ये प्रश्न उसके साथ नहीं उठते, क्या आखिर ? क्या उसे बच्चे नहीं हो सकते या वे दूध पीनेवाले बच्चे नहीं होंगे ? धीरे-धीरे यह 'क्यों धुँधलाता है; पानी, सिर्फ़ एक बूँद; स्याही, जाने कैसी फैल कर एक झील, भूरी आँखों की तरह, वह भी सतही, उथली....अछूता, कच्चा, नुकीला

फूल, आसमान में उड़नेवाली लरजती पतंग की लम्बी पूँछ....किसी बँगले के फटे, पुराने पर्दे....मुल्क में बदअमनी और भूख....वे मित्र जिन्हें नौकरी के लिए पत्र लिखे हैं, जो चाहें तो मैं भी उन्हीं की तरह का लग़ो, बेएतबार और ऊँचे दरजे का नौकरी देनेवाला मुलाज़िम....लेकिन वह नौकरी से चिढ़ती है,—तुम नौकरी करोगे ? फिर तो मोटर, बँगले और सुख की अनेक कोटियाँ हैं। मेरे लिये जगह कहाँ होगी ? मैं ग़रीब बाप की बेटी हूँ।—अजीब बात है, तुम भूख में जी सकती हो, लेकिन वह तो कहती है कि उसके सीने में एक भयंकर ज्वालामुखी दबा पड़ा है, जो कभी भी नहीं भड़केगा, मुन्नी की माँ यह भी जानती है। पर क्यों नहीं भड़केगा, क्यों उसके लावे से मेरा घर-आँगन नहीं पट जाएगा ? इसलिए न कि मैं लिखूँगा और लिखने से पैसे मिलेंगे और पैसे उसे ठंडा करते रहेंगे। वह यही तो कहती है कि पैसा दिल को ठंडा और शरीर को गरम रखने की अद्‌भुत दवा है—गरीब दुनिया का सबसे अच्छा इन्सान है। ग़रीब लड़की की मुहब्बत दुनिया की सबसे पवित्र निधि !—कभी-कभी वह स्कूल टीचर की तरह बोलती है ! आख़िर यह सब और है ही क्या ?

मुन्नी जब जन्मी थी, तो उसके लिए मैंने एक झूला खरीदा था, बहुत-सारे कपड़े बने थे और उसे दूध में ग्लूकोज़ और शहद दी जाती थी।....फ्रेंच सीखेगी मेरी बेटी, मैं चाहता हूँ, वह पेन्टर बने....सिर्फ़ तीस रुपये तो लगते है उसके दूध के। तीस मे ऐसा क्या रखा है ?....साल ही भर बाद रुनकू आया तो कितना उत्साह था !....कोई बात नहीं, दोनों के लिये एक गाड़ी होगी, दोनों कान्वेन्ट जाएँगे।....लेकिन यह क्या फिजूल की बातें है, बेओर-छोर की। मैं झटके से उठ बैठता हूँ और लिखने की कापी के ममौदे कई बार उलट-पुलट कर देखने लगता हूँ। कई अच्छी चीज़ें लिखे बग़ैर पड़ी रह गयी हैं। पर इसी समय उन्हें उठाया तो नहीं जा सकता। मामूली स्तर पर बात बनाने से मुझे चिढ़ है, लेकिन सहसा मुझे मकड़ी के नन्हें तार की स्मृति फिर हो आती है और मैं बिस्तर छोड़ कर

उठ खड़ा होता हूँ, कहीं जाला फिर न तनने लगे ! मुन्नी की माँ ऐसे ही समय आ जाती है,"कही बाहर जा रहे हो क्या ?" एक तेज़ झनक दिमाग़ में बज उठती है, पर मैं उस पर तुरन्त हाथ रख बेता हूँ। कोई कड़वी चीज़ निगलता हूँ, "हाँ कोई काम है क्या ?"

"नहीं तो, ऐसे ही पूछ लिया। अभी तो धूप बहुत तेज है, कुछ रुक कर जाते !"

और वह कह ही क्या सकती है ? थकी भी तो है, बेहद। रुनकू ने सारी दोपहरी परेशान किया है। चौका-बरतन, सामान की सँभाल-सहेज, कपड़ों की सफ़ाई; अभी तो उसे पिला कर सुलाया है। ब्लाउज़ के बटन खुले ही है।

"मुन्नी भी सो रही है क्या ?"

"नहीं, सब जग रहे हैं।" वह उगती हुई हँसी को दबाती है, चेहरे पर खून की पतली-सी छलक होती है और फिर क्षण ही भर में सूख कर धीरे-धीरे गाढ़ी होने लगती है। वह दरवाज़ा छोड़ कर कमरे में आती है, "आज मुन्नी की आँखों में बहुत दर्द है। चेहरा सुर्ख हो गया है। अभी-अभी तो सिर मे तेल डाल कर बहुत देर तक सहलाती रही हूँ, तब जा कर सोई है।"

वह चारपाई पर बैठ जाती है। मैं पास आ कर कहता हूँ, "ब्लाउज़ के बटन तो ठीक कर लो, तुम्हें अब ठीक ढंग से बाडी पहनना चाहिए।"

वह बटन बन्द करते-करते बोलने लगती है,"अब इसके सुख की कल्पना मेरे पास नहीं है, न ही तुम्हारे मन में है और अगर है, तो नहीं होनी चाहिए।" उसका बदन गर्म होने लगता है....मेरे सीने में एक बन्द ज्वालामुखी है, जो कभी नहीं भड़केगा, यह मैं जानती हूँ।....ऐसी ही बातचीत के धरातल पर वह ज्वाला मुखी तक पहुचती है। और मुझे ऐसी ही मंत्र-सी बातचीत से डर लगता है। मैं ईंधन नहीं डालता और वह उठ खड़ी होती है। कहीं जैसे कोई दर्द रेंग गया हो। मैं चाहता हूँ, जात-जाते

उससे कुछ कह कर जाऊँ, पर ऐसे समय कुछ कहने का मतलब है, कुछ सुनने की सम्भावना ।

शायद जिस तरह उसे मालूम है कि मैं कहाँ जाता हूँ, उसी तरह मुझे भी मालूम है कि मैं कहीं नहीं जा रहा हूँ, पर जा रहा हूँ, यह ठीक है ।

मेरे घर के सामने एक चौड़ा नाला है और उसके परे कटीली झाड़ी का एक बड़ा-सा गुंबद । मैंने कभी इसमें एक खरगोश के जोड़े को घुसते देखा था । वैसे मैं पल-भर की पिछली बात को भूल जाता हूँ, पर उसे आज भी नहीं भूला । घर से निकलता हूँ, तो पल-भर रुक कर उधर जरूर देख लेता हूँ । स्कूल से लड़कियों को ढोनेवाली गाडियाँ बोलती है, तीर की तरह सड़क को चीरती हुई कोई चिड़िया उड जाती है, पर वह खरगोश का जोड़ा !....मुन्नी अब तक उठ कर मुझे जरूर ढूंढ गयी होगी और फिर अपने कमरे मे जा कर लौटी होगी । मेरी मेज की गर्द-भरी सतह पर अपने हाथ की थाप बनाने के लिये या तो कुर्सी पर चढ गयी होगी या लुढ़क कर गिरी होगी तो उसकी माँ कुर्सी को दो चपत मार कर उसे चुप कराने के बाद समझा रही होगी कि आखिर उसे इस मेज पर रोज अपने हाथों के निशान छोड़ने से मिलता क्या है !

"पापा छे कैछे कहूँगी कि मैं तुम्हे खोजती थी ?" वह रोज कहती है और मैं रोज झुठला देता हूँ । लेकिन वह मानती नही, मेरी अँगुली पकड़ कर मेज़ के पास तक खींच ले जाती है । मेरी आँखों में धुँधलके की एक परत छा जाती है ।

उसकी माँ कहती है, "खिड़की कितनी ही बंद रखो, गर्द आ ही कर मानती है ।" और मैं....देखता हूँ कि मुन्नी की हथेली की थाप बढ़ती ही जा रही है । कभी-कभी इन थापों की रेखाओं में मनुष्यता का पूरा भविष्य पढ़ा गया है, और कभी आग की बेतरतीब लहरें किसी अनहोने-से वस्तु-सत्य के वीरान अँधेर से दौड़-दौड़ कर मेरे सीने से सटती चली आती हैं....चौकड़ी भरते हिरनों की लम्बी कतारें और पीछे लोलुप, अंधा

दुष्यन्त...

मैं खुद अपने आगे खड़ा हूँ, मान्यताओं की सलीब पर टँगा हुआ, लहूलुहान !.... पत्थर का एक बहुत बड़ा ढेर है और लोग आँखें मूँद कर पत्थर मारते हैं....लोग फूल चढ़ा रहे हैं मान्यताओं पर...आदमी को बार-बार की नोची-छिछड़ी को दाँतों से नोंच-नोंच कर फेंक रहे हैं...लोग नंगी औरत के कोमल शरीर को खुरदरे जूट के रस्सों से जकड़ कर बाँध रहे हैं....सिर्फ़ एक लाचारी का आरोप....आदमी नहीं, टूटा हुआ, पुराना खँडहर....आखिर क्यों ? फिर मैं शिकायतों के बारे मे सोचता हूँ, पर बीवियों और मज़दूरों की नहीं, अपनी ही....तुम रुक कर कुछ पूछ नहीं सकती थी, तुम्हें इतना भी ख्याल नहीं कि मैं इतनी तेज़ धूप में कितनी दूर चल कर आया हूँ। तुम्हें पता है, हम कितने दिन पर एक दूसरे को देख रहे हैं। शायद तुम इसीलिए नहीं रुक सकी कि तुम्हारे साथ तुम्हारी सखी थी और उस पर तुम यह ज़ाहिर होने देना नहीं चाहती थी कि तुम मुझे जानती हो !....गोल-गोल चक्कर खा कर हवा ऊपर को उड़ गयी है और सड़क के किनारे खड़े मौलसरी के पेड़ की तमाम सूखी पत्तियों के पर लग गये हैं। इनके साथ उस कोने की धूल भी है, जहाँ पार्क में बच्चों के खेलने ने घास को उड़ा दिया है और इस लम्बे युकलिप्टस की छरहरी शाखें अब भी थरथरा रही हैं।

मैं धीरे-धीरे चल रहा हूँ। चारों ओर कब्रिस्तान है। सड़क के नीचे, और ऊपर की हवा तक में बातों के टूटे-फूटे अस्थि-पंजर उभर आये हैं। मैं सिर्फ़ चुभन, टीस और प्रतारणा को चुन-चुन कर अपने तरकश मे भरता जाता हूँ। एक विकलांग, विच्छिप्त योद्धा की तरह मैं पसीने और गर्द से लथपथ हो रहा हूँ। हवा एकदम चुपचाप खड़ी है, मौलसरी की पत्तियाँ दम साधे है, युकलिप्टस की लम्बी शाखें मर गयी हैं और बच्चों के पार्क की बेघास की उजली जमीन घिसी हुई, निर्जीव हड्डी की तरह चमक रही है। मैं चाहता हूँ, हवा फिर गोल-गोल चक्कर खा कर ऊपर उठे और फिर वही साल-भर पुराना सब-कुछ आज घट जाए, मौलसरी की पत्तियों,

युकलिप्टस की डालों, पार्क की ज़मीन और मेरे साथ....

मैं थक कर टूक-टूक हो रहा हूँ। पल-भर कहीं बैठना चाहता हूँ और कुछ देर सब बाहर का ही देखना चाहता हूँ, जैसे कोई मकान का दरवाज़ा लगा कर बरामदे में आ जाए। लेकिन अब बहुत देर हो गयी है, लौटने में काफ़ी समय लगेगा।....लगता है, वह घर से निकल नहीं पायी....क्यों नहीं निकल पायी ? उसे निकलना चाहिए था।। उसे लोहे की जूतियाँ पहन कर काँटों को कुचलते हुए आना चाहिए था, लेकिन वह कहती है, "मैं खून से लथपथ होना चाहती हूँ, मैं उन सारे दागों को अपने शरीर पर मुखर रखना चाहती हूँ, मैं सारे घावों की मवाद और गंदगी को लोगों को दिखाना चाहती हूँ ! देखो, सत्य यह है, तुम्हारी सच्चाइयों की तसवीर यह है ! तुमने घर को इसलिए स्वर्ग बना रखा है कि तुम्हारी बीवी तुम्हारी कमाई खाती है और एक खरीदे हुए दास से भी बदतर ढंग से तुम्हारी सेवा करती है। तुम्हे अगर यह पता लग जाए कि वह तुम्हें नहीं किसी और को चाहती है, तो तुम हवा में नजर आते हो, क्योंकि तुम्हें अपने से ज्यादा अपने पैसों पर भरोसा है। यही एक पुरानी टकोरी है तुम्हारे पास।".....एक नन्हा-सा आक्सीजन बैलून हवा मे उड़ता चला जाता है, उसमे तुम बैठी हो,....गरदन दर्द करने लगती है देखते-देखते, लेकिन तुम किसी मायाविनी की तरह पीछे से हँसती हुई गोद में बैठ जाती हो, "मुझे प्यार करो, मेरे जाने का समय हो गया, मैं चाहती हूँ, इसकी याद बनी रह जाय !" पर मुन्नी का बैलून तो मेरे कमरे की निचली छत ही में अटका रह जाता है। वह पैर पटकने लगती है, "पापा ! उतालो इछे ! देखो यह छत चुला लही है मेला गुब्बाला, तुम्हीं ने छिखाया है !"

"मैं कैसे पहुँचूँ इतनी ऊँचाई तक ?"

"अच्छा, मुझे कंधे पल उठाओ !"

"फिर भी तो नहीं पहुँचोगी।"

"कुल्छी पल खले हो जाओ !"

उसकी माँ बिगड़ती हुई आती है, "यह क्या तमाशा है ! अभी तो आँख

हो गयी है, अब हाथ-पाँव भी तोड़ कर बैठोगी ?"

मैं चुपचाप खड़ा हूँ और वह मुन्नी के उतरने का इन्तजार करती है। लेकिन यह तो आक्सीजन ही निकल गयी गुब्बारे से ! "मुन्नी !.... मुन्नी !"

"अब उसे जाने भी दो ! और हाँ, कल रात कुछ लिख रहे थे, वे कागज़ कहाँ गये ?"

....मुन्नी की दवा और दूध....चुपके से मन में कुछ काँपता है—मैं ऐसी ही नन्हीं-नन्हीं बातों को ले कर परेशान होता हूँ।

उसका स्वर कानों में बज उठता है, "आखिर इसमें क्या ऐसा रखा है, जो तुम्हें विचलित कर देता है ? मैं रुकी नहीं, कुछ कहा नहीं, तो क्या ऐसा आसमान फट पड़ा ? मैं पूछती हूँ कि मुन्नी के दूध और दवाइयों का क्या हुआ ? तुम कुछ लिख कर मुझे देनेवाले थे न ?"

और इतने ही समय में यह कुछ धीमी-सी हो गयी है। मैं चुप जो रह गया।

"क्या सोच रहे हो ? मैंने तो समझा कोई कहानी लिख रहे थे। आज किसी को दे कर कुछ रुपये लाते तो अच्छा था। कल दो रुपये का सामान मँगाया था, आज-भर और चलेगा।"

इस नन्हें-से अवसर से सँभल गया हूँ, इसलिए बात बनने में देर नहीं लगती, "वह तो पत्र था। तुम्हें गोदावरी ने लिखा था न कि किताबें भिजवा दो, वही प्रकाशक को लिखा कि उसे भेज दें !....अरे रुको, देखो, वह क्या है ?"

"कहाँ ?"

"रुको तो ! अरे, यह तो वही तिल है !" अँगुलियाँ काँप जाती है। चेहरे पर चुनचुनाहट की तरह कुछ बहुत नन्हा-नन्हा उग आता है,

एक अजीब-सी खुशी की लहर—

"हटो भी, खिड़की खुली है !"

....मेरे सीने में एक ज्वालामुखी है, जो कभी नहीं भड़केगा, यह मैं जानती हूँ।

....मैं समझ नहीं पाता कि स्त्रियाँ और मज़दूर मालिकों को क्यों ओढ़े हुए हैं, महज़ इतनी-सी बात के लिए या मुन्नी की आँखों के माँड़े की दवा या उसके दूध के लिए !

सतह की बातें

ठीक याद नहीं कैसे, पर बात प्रेम पर चल रही थी, और भल्ला अपनी काली पुतलियों को बड़ी-बड़ी आँखों की सफेदी में तैरा कर, बार-बार यही कह रहा था कि शारीरिक सौन्दर्य के बिना, किसी औरत को कोई प्यार कर ही नहीं सकता। उसके होठों पर मुस्कान का नन्हा-सा ज्वार उठता और फिर चेहरे के रेशे-रेशे पर ऐसे फैल जाता जैसे हवा में धातु की खनक फैल जाती है।

"एक मोटी औरत को कोई कैसे प्यार कर सकता है! मैं आप ही से पूछता हूँ, आप कर सकते हैं?" जैसे वह विवाद को कुरेद रहा हो।

उस छोटी शीशे की मेज के इर्द-गिर्द कई लोग बैठे थे। कोने से ज्ञान बोला, "क्यों नहीं, बशर्ते आप भी उतने ही मोटे हों।" और वह ही-ही करते हुए, हाथ-पर-हाथ बजा कर अपनी बात की व्यर्थता पर हँसा। जरा अश्लील संकेत करते हुए बोला, "जरा सोचिए, क्या होता होगा....!"

मुकुटलाल ने ज़ोर का ठहाका लगाया, फिर सहसा हँसी का गला दबा कर कहने लगा, "प्रेम का कोई निर्धारित रास्ता थोड़े ही है जनाब!" उसने एक कहानी छेड़ दी, जिसकी हिरोइन से अभी चार ही दिन पहले वह मिला था। उम्र पचास से भी ज़्यादा होगी और वजन ढाई मन से किसी तरह कम नहीं, पर पति महोदय को उनके वगैर पल भर को चैन नहीं।

कांत बीच में ही बोल उठा, "डरते होंगे साहब!"

हँसी का एक कहाकहा चारों ओर फूट पड़ा। मुकुट की बात जहाँ-की-तहाँ धँस गयी। ज्ञान इस हँसी के जोश के डूबते ही उतरा आया और सधे

हुए तैराक की तरह बेतरह गोते लगा-लगा कर अपनी बातें जमाने लगा, "मुकुट ने ठीक ही कहा है कि रागात्मक सम्बन्धों का कोई एक रूप या नियम नहीं है, न यह सुंदरता, मोटापा या उम्र की किसी सीमा से ही बँधा है। यह तो एक इल्युज़न है, साहब !"

अब तक की बातों में चुप बैठे मुंशी राधानाथ के भारी शरीर में जैसे यह छायावादी बात धँस गयी हो। अपना भारी सिर हिलाते हुए उन्होंने अपनी स्वीकृति की सूचना दी।

ज्ञान उत्साहित हो कर कुछ कहने ही जा रहा था कि कांत ने समस्या को दूसरी ओर मोड़ दिया, "इसीलिए तो इस व्यापार पर सिर्फ किशोरों का ही अधिकार है। समझदार आदमी बहुत देर तक न तो भ्रम में रहना चाहता है, न इस चक्कर में फँसता ही है।"

मुकुट का सूत्र मजबूत पडा। उसने हँसते हुए अपनी पुरानी बात दुहरायी, "इसीलिए मैं हमेशा कहता हूँ कि बाइस के बाद प्रेम किया ही नहीं जा सकता।"

"यह बाइस तक भी क्या कहते हैं मुकुट जी !" मन्नन अपनी बुजुर्गी की गाँठ खोलते हुए बोला, "जिन्हे जीवन मे कुछ करना है, सफलता पूर्वक जीना है, वे इन चक्करों में कभी फँसते ही नहीं।"

ज्ञान आहत हो कर तिलमिला उठा, "तो सफलता के लिए आप प्रेम की कल्पना करते है।"

"नहीं साहब !" कांत कोने से बोल उठा, "जहर खाने के लिए या छत से रस्सी बाँध कर लटक जाने के लिए।"

सब लोग फिर हँस पड़े, लेकिन ज्ञान चुप ही रहा और हँसी बंद होते ही बोल उठा, "देखिए, जोड़-बाकी से प्रेम का कोई मतलब नहीं है। जो लोग इसे व्यापार समझते हैं, उन्हें नून-धनियाँ का रोजगार करके मन्नन जी के शब्दों में सफल आदमी बनना चाहिए। प्रेम के साथ सफलता-असफलता का कोई सवाल ही नहीं उठता। असल में देखा जाए तो यह एक ऐसी गुत्थी है, जिसके सुलझने का मतलब है, आदमी के जीवन के रहस्य का

सुलझ जाना। फिर आदमी के जीने के लिए रह ही क्या जाएगा ?''

मुंशी राधानाथ फिर स्वीकार में सिर हिलाने लगे और भल्ला अपनी सहज तरलता से अपने प्रिय विषय को चुभलाते हुए बोला, ''यह तो सब ठीक है, पर बात तो आप लोगों ने पीछे छोड़ दी। मैंने तो सिर्फ इतना कहा था कि मोटी स्त्री से कोई प्रेम कर ही नहीं सकता और अब भी मैं वहीं हूँ।''

मुकुट कुछ बोलने ही जा रहा था कि बैरे ने मेज पर काफी के प्याले रखने के लिए ऐश-ट्रे, गिलास, पत्र-पत्रिकाएँ तथा छोटे-बड़े आकार के बैग्स समेटने शुरू कर दिये। कुर्सियाँ इधर-उधर खिसकाई गयीं और काफी-हाउस के बड़े हाल में बुद्धिजीवियों की इस गर्म बहस के बंद होने से एक राहत-सी नजर आयी। बगल मे बैठी हुई एक महिला अपने पति को संकेत करके कुछ कहने लगी और काउन्टर पर बैठा मैनेजर जैसे किसी चीज के एकाएक टूट जाने पर सतर्क हो कर उस मेज की ओर देखने लगा। दूर कोने की मेज पर बैठा हुआ बदसूरत नवजवान फिर अपनी ऐनक ठीक करके, अपनी क्राइम-स्टोरी की पुस्तक उलटने लगा।

ज्ञान अब भी बात को खोद कर उठाना चाहता था और इस बार उसकी भरसक कोशिश यही होती कि वह इस विषय पर अधिकारी मत दे जाए। तभी कांत ने फिर 'रोड़ा फेंका, ''ज्ञान जी को इस विषय का अधिकारी माना जाए—यह मेरा प्रस्ताव है।''

इस प्रस्ताव के आगे 'क्यों ?' लगाने का उत्तर सिर्फ इतना था कि ज्ञान ने किशोरों के प्रेम की एक लम्बी कहानी लिखी थी और शायद इस बहस मे प्रेम सम्बन्धी बातों को इतने वेग से व्यक्त करने के पीछे उसके मन की यही दबी भावना थी। पर कांत के इस असामयिक सीधे प्रहार ने उसे फिर मैदान मारने से रोक लिया।

काफी की एक गर्म चुस्की के बाद सिगरेटों के लिए दियासलाइयों की तीलियाँ बज उठीं। हलके धुएँ में एक विश्वस्त-सा वातावरण और बाहर पानी की सघन बूँदें—सभी पल भर को चुप रह गये।

भल्ला की कुर्सी के पीछे से अपना प्याला मेज पर रखते हुए एक ऐसा आदमी इस समय बोला, जो शायद इस मनःस्थिति से बाहर था, इसीलिए बोल सका होगा, पर ठीक कहा नहीं जा सकता।

"आप लोग तो एकाएक चुप हो गये !"

"अरे मैं तो भूल ही गया था दीक्षित साहब, माफ कीजिए ! ये सभी मेरे लायक दोस्त हैं। इनमें से सभी कलाकार यानी मेरा मतलब लेखक और चित्रकार से है....।"

अभी भल्ला अपनी बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि कांत ने उसे पूरा कर दिया, "बेशक मोटरकार से नहीं।"

जोर की हँसी फिर फूट पड़ी। गो बात एकदम बेमानी थी, लेकिन दीक्षित फिर नही हँसा और कुर्सी थोड़ा आगे खिसकाते हुए बोला, "कल्पना जीवी हैं आप लोग। सुन कर बहुत कुछ धुनते हैं, पढ़ कर बहुत कुछ मढ़ते हैं।"

भल्ला उसी रौ मे बोला, "देखा आपने, हमारे दीक्षित साहब को, एक ही वाक्य में क्या कह गये।"

"नहीं साहब !" दीक्षित बोले, "मै क्या कहूँगा आप लोगों के आगे, लेकिन वह जरा देखिए कोने में एक आदमी बैठा है। आप समझते होंगे वह एक बदसूरत नौजवान है, लेकिन ऐसी बात नहीं, वह मेरा सहपाठी है। उम्र पचास के पास है उसकी।"

"बेशक साहब, मैं उसे जानता हूँ और शायद उतना, जितना आप भी न जानते होंगे। बहुत सारे लोग उसे जानते हैं पर वह किसी को नहीं जानता। मै तो उससे घंटों बातें करके देख चुका हूँ। लेकिन अगर अभी पूछूँ तो कहेगा, "आप....! आप को पहचाना नहीं मैंने !" कांत कुछ गम्भीर हो कर बोला।

"बात उन दिनों की है जब वह राजा नन्दा प्रेस में जनरल मैनेजर हो कर आया था। आप सभी जानते हैं कि वहाँ कैसे मैनेजर होते हैं। बड़े बाप का बेटा, ऊपर से विदेश की ट्रेनिंग, पर साहब, जब आया तो मुझे

देखते ही दौड़ कर गले से लग गया। प्रोडक्शन-इन्चार्ज से उठा कर मुझे असिस्टेन्ट मैनेजर बनाया और हर तरफ अपनी योग्यता और स्नेह-भाव से काम में ऐसा चमत्कार पैदा किया कि जिसे देखो वही उसकी तारीफों के पुल बाँध रहा है।"

मुकुट ध्यान से दीक्षित की आँखों में देखने लगा था। धीरे-धीरे लोभ दीक्षित की बातों में एकदम घुल-मिल गये। शाम के काफी-हाउस का शोर-शराबा इस नन्हीं मंडली के एकान्त के पास आते ही मुरझाने लगा।

"मेरे कमरे से उसके कमरे में जाने के लिए एक दरवाजा था", दीक्षित बोलता जा रहा था, "उस पर एक मोटे कपड़े का पर्दा पड़ा रहता था। लेकिन जैसे ही वह कमरे में आता उस मोटे पर्दे को उठा कर दरवाजे पर टाँग देता। चारों ओर के चेक उठवा देता। अपनी परसनल असिस्टेन्ट मिस फ्लोशिया के कमरे और खिड़कियों के पर्दे भी उठवा देता। और काम के बीच-बीच में वह इधर-उधर घूम कर लोगों से तरह-तरह की बातें करता, हँसता और कभी-कभी उठ कर दूसरों की मेज पर जा बैठता।

"दफ्तर का एक अजीब-सा माहौल था। हर रोज चाय का कोई विशेष आयोजन, मीटिंग, गोष्ठियाँ और विचार-विमर्श; जैसे उसे पल भर को भी राहत न हो।

"एक दिन सबेरे ही कुछ ज्यादे काम के कारण वह दफ्तर के समय से पहले आ गया था। अभी तक दफ्तर में कोई नहीं था। उसने आफिस की ऊपरी बालकनी मे कुर्सी और छोटी मेज डाल कर वहाँ दफ्तर लगा लिया। मुझे भी समय से पहले बुलाया गया था। पहुँचा तो देखा, साहब बालकनी में मेज पर सिर टिकाये कुछ सोच रहा है। मुझे जाने क्यों इधर एक चिन्ता हो आयी थी उसके लिए। एक दिन मैने मिस फलीशिया को बुला कर कहा भी था कि इसे समझाने की कोशिश करो। मेरा दोस्त है। मुझे लगता है, यह कुछ परेशान-सा रहता है। आखिर बात क्या है! उसने इतना ही कहा था कि, 'मुझे अनुभव नहीं है। न अभी मैंने कभी आदमी को समझने की कोशिश ही की है, अभी पहली बार तो यहाँ

नौकरी की, पर इतना जरूर कहूँगी कि ऐसा आदमी मैंने देखा ही नहीं जीवन में।' और वह चुपचाप वापस चली गयी थी। खुद उसने इन्टरव्यू करके पहले से ज़्यादा तनख्वाह पर फ्लीशिया को नौकरी दी तो प्रेस में एक सुनगुनी-सी फैली थी पर कोई विशेष आधार न मिलने के कारण वह जहाँ-की-तहाँ मर गयी थी।

"हाँ, मैं उस दिन उसके पास गया तो वह चौंक पड़ा और हँसते हुए कहने लगा, 'अकेले में मुझसे कुछ काम ही नहीं होता दीक्षित ! मैं आदमियों से घिरा रहना चाहता हूँ। हरदम काम में डूबा रहना चाहता हूँ।'

"आप अब शादी क्यों नहीं कर लेते। इसीलिए आपका मन नहीं लगता।"

"वह हँसा, लेकिन फिर चुप हो गया। पल भर खामोश रह कर कहने लगा, 'दीक्षित एक बात मैं तुमसे पूछना चाहता था। तुम मेरे दोस्त हो इसलिए कह रहा हूँ। बुरा न मानना। विदेश जाने से पहले मैं मिस्टर हाल्दार के बँगले में बहुत दिनों तक रहा था। वहाँ मेरा एक लड़की से परिचय हो गया। धीरे-धीरे हम दोनों एक दूसरे के पास आ गये। फिर ऐसा लगने लगा कि अब हमारा अलग रहना मुश्किल है। लेकिन तब वह पढ़ रही थी और मैं भी थोड़ा समय चाहता था, इसलिए शादी की बात हमने कभी की ही नहीं। हमारा स्नेह तो शादी से भी आगे था। शरीर-मन सब से हम एक हो चुके थे।

'कुछ अजीब बात है कि इस एकात्मकता ने हमें इतना बाँध लिया था कि हमने कुछ दूसरी बातें कभी सोची ही नहीं। वह भी कभी शादी की बात न कहती थी, न सोचती थी। किसी भी तरह का दूसरा असन्तोष हमारे जीवन में कभी आया ही नहीं। हाँ, जब मै कभी कहता कि अगर कुछ हो गया तो ? वह सहसा चौंक कर दुखी होती, पर सिर्फ क्षण भर के लिए। फिर कहती, 'मैं उसका इन्तजाम रखती हूँ। तुम भी तो....!' वह खिलखिला कर हँसने लगती और चली जाती। कभी मेरा एक मिनट का

समय बेकार न होने देती, न खुद का करती। सब मिला कर एक अजीब-सी बात है। सोचता हूँ तो विस्मय होता है, क्योंकि हम एक दूसरे को पारिवारिक रूप से पूरी तरह जान भी न पाये थे और कहाँ-के-कहाँ पहुँच गये।

'इसी बीच मेरा बाहर जाने का निश्चय पक्का हो गया और मैं तैयारी करने लगा। अन्तिम बार जब वह मुझसे मिलने आयी तो उसने वही कपड़े पहन रखे थे, जिसे उसने पहली बार पहन कर स्नेह के द्वार पर कदम रखा था। कहने लगी, 'मैं दो बातें करने आयी हूँ, एक तो यह कि तुम बहुत अच्छे आदमी हो, इसलिए मुझे तुमसे थोड़ा-सा डर है।' मैंने कहा,—क्या वहाँ से मेम ब्याह लाऊँगा!

'वह हंसने लगी, 'तुम हमेशा किसी बात की सतह पर जीते हो। मैंने कभी कहा नहीं, पर आज कह रही हूँ कि यह व्यक्ति के लिए गुण नहीं है। समाज भले ही इसे अच्छा समझे। खैर इसे छोड़ो, मुझे इस बात का डर नहीं और अगर होगा तो भी मैं इस डर से निबटना जानती हूँ, लेकिन तुम्हारी इस अच्छाई से मुझे खौफ होता है। मसलन अगर मेरे साथ इस लम्बे शारीरिक सम्बन्ध में कोई गड़बड़ी हो जाती और मैं किसी तरह तुम्हें बचाना भी चाहती तो तुम उसमें कूद कर अपना सिर टकरा देते। शायद यह तुम कभी भी नहीं कह सकते थे कि मैं तो इन्हें जानता ही नहीं कि यह कौन है, कहाँ की हैं। यह एक गैर-रस्मी बात कह रही हूँ, लेकिन सिर्फ इतने से मेरा मतलब नहीं है। इसे दूर-दूर तक तुम समझना और करना। दूसरी बात यह कि आज मैं सम्पूर्ण रूप से तुम्हें देखना और अपने को दिखाना चाहती हूँ और इतनी थक जाना चाहती हूँ कि अगर तुम फिर कभी लौटो भी न....।' कहते-कहते वह मुझसे इस तरह चिपक गयी थी कि मैं पल भर के लिए सुध-बुध ही खो बैठा था।

'खैर इसे जाने दो, यह तो मैंने एक बात बताई। विदेश से लौटा तो पता लगा वह एक शादीशुदा औरत के रूप में जीवन बिता रही है। यहीं से मैं दो हिस्सों में बँट गया। मन- बुद्धि का अजीब-सा संघर्ष पैदा हो गया मेरे अन्दर। मन कभी उसकी ओर भागता, कभी उससे दूर जाता। कभी

विद्रोह करता, कभी अपने को समझाता, पर बुद्धि हमेशा यही कहती कि वह सुखी है। उसे जीवन के सुख का पूरा अधिकार है। मुझे तो और भी प्रसन्न होना चाहिए कि उसका जीवन बहुत सुख में व्यतीत हो रहा है।"

कांत बात के यहां पहुँचते ही झुँझला उठा। प्रेम की इस तरह की समाप्ति उसकी आलोचना का मुख्य विषय रहा है। वह इस पर खीझ कर बहुत कुछ कहता रहता है, इसलिए हँस कर बोला, "साहब, आप तो लगता है, एक पुरानी शराब नयी बोतल में भर कर पेश कर रहे थे, पर होठों से लगाते ही राज़ खुल गया। शायद आपने उनसे यह भी सुना हो कि उन्होंने सहानुभूति और शुभकामनाओं का कोई आशीर्वाद-पत्र भी उस महिला को भेजा था!"

"यही तो मैं कहने ही जा रहा था।" दीक्षित ने फिर बात पकड़ ली। "वह बोलता रहा, लगातार, 'उसे जाने कैसे पता लग गया कि मैं बाहर से लौट आया हूँ। फिर किसी तरह कलकत्ते का पता लगा कर वह मेरे पास पत्र भेजने लगी, लेकिन मैं चुप रहा। किसी भी पत्र का न तो मैंने उत्तर दिया, न उसके बुलाने पर कहीं गया। सुनता था उसकी एक भरी-पूरी गृहस्थी है, एक बच्चा और बड़ा ही सहृदय, सुशील पति। मेरी आत्मा ने किसी भी तरह यह गवारा न किया कि किसी बसे हुए नीड़ के नष्ट होने का मैं कारण बनूं। लेकिन उसके पत्र बराबर आते रहे। कभी वह लिखती, —मैंने अपने घर में कभी भी चैन की साँस नहीं ली, लेकिन यह कहते हुए मुझे डर है कि कहीं तुम यह न समझ बैठो कि मैं उसी सतह पर जी रही हूँ, जहाँ तुम कभी जीते थे। मैं अपने आदमी से लाचार हूँ। वह मेरा दुश्मन बना रहता है, क्योंकि वह किसी भी तरह मुझे परेशान नहीं करता। हर क्षण स्नेह और ममता के इतने गहरे बंधन लगाता रहता है कि मैं उसे तोड़ कर फिर उसमें उलझ जाती हूँ। मैंने सब कुछ उसे बता दिया और यह भी कहा कि मैं तुम्हारी नहीं हूँ तो वह और भी अधीर हो कर मेरे सीने से चिपक जाता है। और कहता है,—यह सब झूठ है। तुम उसकी होती तो वह...., मैं उसकी बात नहीं सुनती तो भी वह मेरा पीछा नहीं

छोड़ता ।

—अंत में यह तय पाया था कि तुम्हारे आते ही या कुछ लिखते ही वह मेरा पीछा छोड़ देगा, लेकिन बच्चों को मुझसे ज़रूर चाहेगा । मैं तैयार हो गयी थी और सोचती थी कि तुम ज़रूर आओगे । मेरी कही बात अब तक तुम्हारी समझ में आ गयी होगी ।" कहते-कहते दीक्षित पल भर को रुका । जैसे वह थक-सा गया था, लेकिन पूरी मंडली के चेहरे पर अब भी उत्सुकता बनी हुई थी । लोगों की चेतना पल भर को लौटी तो सिगरेट पर ध्यान गया

कात न ज़ोर की फूंक छोड़ते हुए कहा, "दीक्षित जी आप तो गहरे आदमी मालूम होते हैं ।" तब तक मुकुट बोला, "हाँ साहब, तब क्या हुआ ?"

"हुआ क्या !" दीक्षित बोला, "वही जो कांत जी ने कहा, इसने एक सहानभूति का पत्र उसे लिख भेजा । उसमें यही सब कहा कि तुम यह सब ग़लत करती हो । जिन्दगी इस तरह बर्बाद करने की चीज़ नहीं है । मैं तो इस बात को जान कर बहुत खुश हूँ कि तुमने एक गृहस्थी बसा ली है । तुम सब तरह से भरी-पूरी हो । मेरी हार्दिक शुभकामनाएँ और स्नेह तो जीवन भर तुम्हारे साथ हैं ही, इत्यादि । इसी पत्र के उत्तर में जो चिट्ठी आयी थी, उसे उसने मेरी ओर बढ़ाते हुए कहा, 'देखो अब क्या करूँ । यह सच है कि मैं किसी भी चीज़ को उतना न चाह सका जितना उसे चाहता हूँ । क्योंकि उसे मैंने जैसे पाया था, वह सब अनोखा था और इस अनोखेपन का नशा मेरी नस-नस में भर गया है । आज भी मैं रात-रात भर उसके बारे मे सोचता, जागता पड़ा रह जाता हूँ, पर क्या यह मेरे लिए, समाज के लिए और उसके लिए हित कर है ?"

"मैंने कहा, एकदम ठीक कहते हो तुम । अगर ऐसी ही प्रेम-दिवानी थी तो शादी क्यों कर ली । कुछ दिन और रुक जातीं, और शादी भी कर ली थी, तो बिना पति-प्रेम के ही बच्चा कहाँ से निकल आया ।

"उसे जैसे चोट लगी हो, मेरी बात से । कहने लगा, 'अब इन बातों को जाने दो, यह चिट्ठी पढ़ो !"

"क्या था साहब उस चिट्ठी में।" कांत उतावला हो कर बोल पड़ा।

दीक्षित पल भर को रुक कर यह कहने लगा, "आप सोच भी नहीं सकते कि उस चिट्ठी में क्या लिखा होगा ?"

"यही कि तुम शादी कर लो। मुझे समझाते हो, पर मैं कैसे समझूं कि तुम मेरे बिना दुखी नहीं हो।" ज्ञान ने अपनी स्नेह-दृष्टि की सहायता ली।

"नहीं साहब !" मुकुट बोला, "उसने लिखा होगा कि तुमसे मुझे डर बना है कि कहीं कोई बात खुल न जाए। मैं बराबर तुम्हें पत्र लिखती रही और बुलाती रही, सिर्फ़ इसलिए कि तुम्हारा रुख जान सकूं,। तुम्हारा पत्र पा कर मुझे चैन मिला है, तुम सचमुच बहुत भले हो। ये भी बडे भले हैं। इतनी शिकायत तो मैंने सिर्फ़ इसलिए की थी कि तुम्हारी बात जान सकूं। मैं तुम्हारी चिट्ठियाँ अब भी सँभाल कर रखे हूँ, कभी-कभी उन्हे पढ़ कर बेहद रोना आता है। मेरे पत्र तो तुमने फाड कर फेंक दिये होंगे ?"

राधानाथ जी से चुप न रहा गया। हँस कर बोले, "तो इस तरह अपनी चिठ्ठियाँ वे लेना चाहती होगी, जो उसने पहले उसे लिखी थीं।"

भल्ला बोला, "उसका पति नपुसक रहा होगा। या वह सुन्दर नही रही होगी।"

"यह सब कुछ नहीं साहब !" कांत बोला, "उसने पत्र मे आत्महत्या की धमकी दी होगी। कभी-कभी ऐसी लडकियों के पति खुद भी यह बातें करवाते हैं, अपनी पत्नियों से। और अगर पुराना प्रेमी चढ भागा तो या जान गवाया या फिर जूतियाँ खा कर घर से बाहर निकाला गया।"

दीक्षित मुस्कराया, "यह सब कुछ नहीं था। उसमें लिखा था— ललित, तुम्हारा नोट मिला, अच्छा होता कि तुम न लिखते। इस पत्र ने तो मेरे मन की रही-सही शक्ति भी छीन ली है। तुम इतने मतही हो, यह मैं नहीं जानती थी। मैं औरत की उस भाषा में न तुमसे कभी

बोली थी, न वह सब सुन ही सकी थी, जो लोगों से सुना जाता है। कभी मैंने तुमसे शादी की बात उठायी थी ? फिर तुमने यह पत्र लिखने का हौसला कैसे किया—यह नहीं सोच पा रही हूँ। मैं समझती थी तुम विदेश से लौट कर मेरा जीना दूभर कर दोगे। कुछ ऐसी परेशानियाँ मेरे परिवार के चारों ओर पैदा करोगे कि मेरा पति मुझे चरित्रहीन और कुलटा समझने पर मज़बूर हो जाएगा। या सिर्फ़ अपनी शान्ति के लिए मुझसे पिंड छुड़ा लेगा। लेकिन तुमने शुभकामनाएँ भेजी है और यह वही भेजता है, जो अपने को समझा लेता है, और जो अपने को समझा लेता है वह प्रेम नहीं करता।

"तुमने सीधे यह क्यों नहीं लिखा कि तुम मुझ से प्रेम नहीं करते, न कभी करते थे। वह तो सिर्फ एक सामयिक इच्छा थी। लेकिन किसी बीती हुई सामयिक इच्छा के प्रति भी आदमी इतना अबोध हो सकता है, जितने तुम हो ?... तुम मुझे उपदेश देते हो ललित ! तुम्हारा पत्र पढ कर मेरा खून खौल रहा है। अगर तुम मेरे पास होते तो या तो मैं खुद अपने को मिटा देती या तुम्हारा ही अन्त कर देती।

"अब सिर्फ एक तरीका बच रहा है, वह यह कि या तो तुम इस दुनिया मे रहो, या मैं। दोनों इस तरह नहीं रह सकते। हाँ, दोनों इसे साथ-साथ छोड़ सकते है। लेकिन तुम पर मुझे पहली बार अविश्वास हो गया है। इसलिए मैं चाहती हूँ कि तुम इसे पहले छोड़ो, क्योंकि तुम मुझे धोखा दे कर जी सकते हो, और मेरे पति के पास संवेदना का पत्र लिख कर अपना दुख व्यक्त करके चैन से समय काट सकते हो। इसलिए मैं चाहती हूँ, तुम इस दुनिया को मुझसे पहले छोड़ो। पत्र के भीतर जो गोलियाँ है, रात इन्हे पानी मे निगलने पर तुम फिर नहीं उठोगे। यह पत्र पुलिस की शहादत के लिए काफी होगा, सिर्फ उस हालत में जब तुम्हें मेरे ऊपर विश्वास न हो। वैसे तुम्हारी मृत्यु का समाचार पाते ही मैं अपने हिस्से की गोलियाँ खा लूँगी।" दीक्षित फिर चुप हो गया। उसे खाँसी आने लगी थी।

भल्ला सहसा घूम कर बड़ी बेसब्री से कहने लगा, "तो फिर क्या हुआ दीक्षित जी ?"

"वह यही तो चाहता था।" दीक्षित ने बहुत दुखी हो कर उत्तर दिया। 'जैसे ही मैंने पत्र पढ़ना बन्द किया, वह बोल पड़ा, दीक्षित मैं खुद भीतर से इतना टूट गया हूँ कि मेरे लिए जीने का कोई अर्थ नहीं रह गया है। मैं सब तरह से सोच चुका हूँ। इसके अलावा को ई रास्ता नहीं। अब मै उसके बगैर भी नहीं रह सकता, और उसे पा कर भी नहीं जी सकता। उसने ठीक ही लिखा है।' कहते-कहते वह उठ खड़ा हुआ, 'तुम अभी कुछ देर यही बैठो, मै आता हूँ !'

"वह तेज़ी से आफिस के कमरे की ओर गया। मुझे एकाएक ज़हर की गोलियों का ख़्याल हो आया। कहीं ऐसा न हो कि अभी इसी आवेश मे कुछ कर बैठे। मै उठ कर लपका पर वह दफ्तर के कमरे में कहीं भी दिखायी नही पड़ा। मैंने इधर-उधर देखा, बगल के कमरे के पर्दो से झाँका, पर वहाँ कोई नहीं। फिर एकाएक फ्लीशिया का ध्यान हो आया। वह तो अभी टाइप कर रही थी, कहाँ चली गयी ? मैंने रिटायरिंग रूम के पार्टीशन को पार करके, उसके कमरे का पर्दा उठाया तो देखा, वह फ्लीशिया को दोनों बाहों में भरे मनमाना चूम रहा है।"

इसके बाद दीक्षित बोल नहीं सका, जैसे उसका गला किसी ने दबा दिया हो या सिनेमा की कोई रील बीच में कट गयी हो। उसने किसी की ओर देखा भी नहीं और सिगरेट निकाल कर जलाने लगा।

कांत से न रहा गया। उसने कहा, "बस साहब। आपने तो बात बीच ही में तोड़ दी। आखिर वह आगे भी काम करता रहा तो फ्लीशिया और उसका इश्क चला होगा !"

"नहीं जी, वह तो उसी दिन मर गया, फिर दफ्तर में काम करने का सवाल कहाँ से उठता। हाँ, फ्लीशिया तो अब तक वहीं है।"

"लेकिन आप तो कह रहे थे वह यहाँ उस कोने की मेज पर....
ज्ञान उसे देखने को घूमा तो सभी की दृष्टि उस ओर चली गयी। मेज़ खाली थी और ऐश-ट्रे के ऊपर रखे अधजले सिगरेट से धुएँ की एक लट टेटी-मेढ़ी सर्पाकार हो कर, छत की ओर बढ़ती जा रही थी।

●

"तुम जब चाहो, मुझे बुला लिया करो और देखो न, घर में बच्चे हैं, माँ-बाप हैं, उनके लिए कुछ करो, और कुछ न बने तो उनके साथ बैठ कर कोई खेल ही खेला करो ! मन अपने आप बहल जाएगा।" माही चुपचाप सुन रही थी, लेकिन जैसे रुक्मी का कुछ भी वह ग्रहण नहीं कर रही थी

रुक्मी ब्याही है, पढ़ी-लिखी है और एक-दो साल में ही उसने एक सफल गृहस्थिन बन कर अपने जानने वालों के मन में आदर का भाव पैदा कर लिया है। अड़ोस-पड़ोस की लड़कियाँ रुक्मी के पारिवारिक जीवन से इतनी प्रभावित हैं कि वे उसकी तारीफ़ भी करती हैं और कभी-कभी उसे घमंडी और चालाक कह कर अपनी नाकामियों पर पर्दा भी डाल लिया करती हैं।

माही एक अलग तरह की लड़की है। रुक्मी उसे 'केस' कहती है, लेकिन माही को लगता है रुक्मी ही एक 'केस' है। इसलिए जब रुक्मी बात करती होती है तो माही चुपचाप उसे देखती रहती है।

आज भी माही उसे एकटक देख रही थी, रुक्मी ने बात समाप्त करके धीरे-से दरवाज़ा खोला, फिर उसे उसी तरह बन्द किया और जैसे ही बाहर निकली, पोस्टमैन ने उसके हाथ में एक लिफाफा पकड़ा, दिया—

माही, ०५ टैगोर टाउन, इलाहाबाद।

रुक्मी ने उलट-पलट कर लिफाफा देखा, क्षण भर को खड़ी सोचती रही, पीछे मुड़ी, देखा, दरवाजा जैसे-का-तैसा बन्द था। सामने देखा,

पोस्टमेन हाथ की चिट्ठियों मे आँखें गड़ाये काफी आगे बढ़ गया था। उसने पत्र को मोडा, ब्लाउज़ के नीचे डाला और अपने घर चली आयी।

रुक्मी बहुत दिनों पर ससुराल से लौटी है, फिर भी उसके आते ही घर का सारा काम उसके हाथों में आ गया है। अगर वह बापू की थाली के पास न बैठे तो उन्हें खाना ही नही रुचता। बच्चे उसके आँचल से चिपके रहते है और माँ तो उसे घर में आया जान कर अस्त्र ही डाल देती है।

माही के घर से लौट कर इस समय जब वह घर पहुँची तो बाहर ही से बाबू की पुकार सुन कर दूसरी ओर के कमरे मे मुड़ गयी।

"रमाकान्त का तार आया है।"

"तार ?" रुक्मी कुछ सहम-सी गयी।

"हाँ, वैसे इतने के लिए चिट्ठी भी काफी हो सकती थी। पर साहब तो साहब ! कौन बैठ कर घंटे भर चिट्ठी लिखे।" रुक्मी के पिता उत्साह से बोल रहे थे। "वह बहुत व्यस्त है, आ नही पाएगा। तुम्हे भेजने का इन्तज़ाम मुझे ही करना पड़ेगा।"

बापू फर्शी पर दम खींचने लगे और रुक्मी सूखे पत्ते की तरह उड़ता हुआ तार ले कर घर मे घुस गयी। उसके जी मे आ रहा था कि कमरा बन्द करके जी भर रोये, पर माँ और भाइयो की हँसी-खुशी मे उसे हिस्सा लेना ही था, इसलिए वह उन्हे खिलाने-पिलाने में व्यस्त हो गयी। कही कोई नाराज न हो जाए, जिसमे दिनों की अर्जित उसकी ख्याति पर बट्टा लग जाए। लेकिन उसे अपने पर बार-बार झुँझलाहट हो रही थी। खीझ आती थी, कि क्या जीवन भर वह अपने मन के विपरीत, दूसरों को खुश करती ही जाएगी। क्या यही उद्देश्य है उसके जीवन का ? क्या उसका अपना कुछ भी नहीं। और तभी उसे माही का ध्यान हो आया। रुक्की के सीने से लगा पत्र करक उठा। उसके कलेजे के घाव मे खरोंच लग गया। माही उसके सामने खड़ी दिखी—अथाह, गहरे समुद्र की तरह। निर्मम

गहराइयोवाले शात सागर-सी माही की खामोशी उसी को नहीं, उन सारी लड़कियों को भयावह लगती, जो अपने प्रेम के सुर को वक्त-बेवक्त अलापा करती थी। माही की एक ही बात उसे बार-बार याद आती, "आखिर डर किस बात का दीदी, जो बात जैसी है, उसे उसी तरह से तो देखा जा सकता है। कभी आदमी अपने वश से बाहर भी तो हो जाता है।" फिर वह चुप हो जाती है और निरन्तर छेड़ी जाने पर भी अविचलित बनी रहती है।

...."माही, ऐसा नहीं करना चाहिए, लोग क्या कहेगे।" अगर उसकी कोई सहेली कहेगी, तो वह किंचित हंस कर कहेगी, "कहनेवालों का मुँह किसने बन्द किया है, लेकिन जो मन ठीक समझता है, अगर उसको करने मे डरती रहूँ तो फिर मुझ मे पशु मे अन्तर ही क्या हुआ ?"

—माही ज़रूर किसी को प्यार करती है। जरूर उसके मन में कोई ऐसा बैठा, जो उसकी इन बातों का सूत्रधार है।—रुक्मी के सीने मे फिर लिफाफा करक उठा और वह बेचैन हो गयी।

—इस पत्र मे जरूर कुछ ऐसा है। हो नहीं सकता कि यह प्रेम-पत्र न हो !—पर दूसरे ही क्षण रुक्मी का विश्वास किसी लड़की अथवा रिश्तेदार के पत्र पर जा टिकता।—माही तो बहुत कम लिखती है।—और फिर, उसके मन मे विचित्र कल्पनाओं का तंतु-जाल फैलने लगता और सहसा उसे लगता जैसे वह माही से भीतर-ही-भीतर जलती है। इसीलिए तो उसने माही का पत्र इस तरह उड़ा लिया है। फिर सहसा उसे उस तार का ध्यान हो आया, जो हवा के झोके मे उड़ता हुआ आधे आँगन पहुँच चुका है और उसके मन मे एक बार भी उसे उठाने की इच्छा नहीं हो रही थी।

किसी तरह ले-दे कर रुक्मी ने बारह बजे खाना खाया और झपट कर अपने कमरे मे पहुँची। धड़कते दिल से लिफाफा निकाला और खोल कर पढने लगी।

मेरी माही,

इस बीच मेरा मन बहुत दुखी है। इसलिए नहीं कि तुम दूर हो, इसलिए भी नहीं कि तुम मुझे प्यार नहीं करती। मैं जानता हूँ कि अब हमारा प्यार एक ऐसी सच्चाई बन गया है, जो हमारे झुठलाने की सीमाओं से पार हो गया है। अब कोई बड़ी-से-बड़ी बाधा भी हमारे मन को मोड़ पाने में असमर्थ है। फिर भी मैं अशक्त और बेचैन हो उठा हूँ। वैसे तुम्हारा प्यार मेरे जीवन का सहारा बना हुआ है, पर उस सहारे मे कमजोरियों के ऐसे भयानक कीटाणु छिपे है, जो मेरे मन को निरन्तर कटु बनाते जा रहे हैं—यह एक रोग है, मेरी प्यारी माही ! ऐसा रोग, जो आदमी की नींद हराम कर देता है। मै खूब समझता हूँ, पर उससे मुक्त हो पाना मेरे अपने बूते के बाहर की चीज है।

तुम जानती होगी, मै तुम्हे देख नही पा रहा हूँ या तुम्हारे जीवन का कोई एक भी क्षण ऐसा है, जो मेरी जानकारी से बाहर है ! लेकिन ऐसी बात नही, वह सिर्फ इसलिए कि तुम अब इतनी दूर तक आ चुकी हो जहाँ से मेरे लिए तुम्हारा कुछ भी छिपा नहीं है। पर मै न जाने क्यों चाहता हूँ, कि तुम सब कहो, मुझे बताओ कि वह सब क्यों हुआ ?

तुम अपने प्यार का एहसास मुझे दिलाती हो। अपने दुख की बात लिखती हो। यह भी क्या कोई लिखने की चीज़ है ? उस पर कुछ कहना बाकी रह सका है, मेरी माही ? वह सब अब मन का एक अंग बन चुका है। लिखने से उसकी महिमा कम होती है। लेकिन दूसरी बात का कोई उत्तर तुम्हारे लिए असम्भव हो गया है।

आज मैं एकदम निराश हूँ। तुम लिखती हो कि, अगर ऐसा ही सन्देह है तो हरदम साथ क्यों लिये नही रहते ? माही, सन्देह अगर तुम पर करूँगा तो वह अपने पर होगा और सन्देह करनेवाले के लिए साथ और दूर कोई दो चीजे नही हैं। शरीर के अस्तित्व मात्र से सन्देह नहीं मिट सकता। उसका नाता तो हृदय से है,—सिर्फ एक भाव, अनदेखा, अव्यक्त। भला उसे कौन देखेगा ? इसलिए शरीर तो साथ रह सकता है पर मन की कौन कहे ? लेकिन मुझे तो तुम्हारे मन पर भी कभी सन्देह

नहीं रहा। बस यही लगता है, जैसे कोई रोक है हमारे-तुम्हारे बीच, जो घटनाओं को अपने सही रूप में दिखाने से तुम्हें रोकती है, और यही मेरे लिए असह्य है। तुमने मेरी निष्ठा को डिगा दिया है।

यह एक अजीब बात है मेरी रानी, कि तुम्हारा झूठ मेरे लिए कभी भी सच नहीं हो पाता। चाहे वह कितनी ही निष्ठा से कहा गया हो। मेरी चेतना उसे अनजाने ही चुन कर बाहर कर देती है। मैं उससे लड़ता हूँ, झगड़ता हूँ, पर वह जाने क्यों अपना काम किये जाती है। इसलिए जब तुम अपने जीवन की उस घटना को मुझ से कहती हो, तो मैं उसमें तुम्हें खोजता हूँ। तुम उसमें कहाँ थी, उस तसवीर में कौन-सा रंग तुम्हारा था, मैं वह देखना चाहता हूँ।

मैं यह भी जनता हूँ कि तुम मेरे खातिर बहुत कुछ कहने में हिचकती हो। मुझे दुख होगा, मेरी शक्ति कम होगी, मैं तुम्हें छोड़ दूँगा....पर.... नहीं,....तुम यह कभी नहीं सोचती, कभी नहीं, माही ! तुम्हें विश्वास है कि मैं कभी भी तुम से अलग नहीं हो सकता, फिर ऐसा क्यों ? क्या तुम्हारा अपना कोई मन्तव्य है ? क्या कहीं तुम्हें कोई कष्ट है, जो मेरा नहीं है ? क्या ऐसा नहीं है कि इस नन्हें-से बिन्दु पर हम तुम दो हैं.... अलग-अलग ? सच मैं पहली बार इसे सोचने लगा हूँ।

इसलिए अब कभी नहीं लिखूँगा, मेरी अन्तरंग ! तुम्हें कष्ट देना मुझे जरा भी प्रिय नहीं। मुझे न लिखना, पत्र नहीं मिलेंगे। मैं कहीं बाहर जा रहा हूँ और यह भी तय नहीं कि कब तक लौटूँगा.... अलविदा.....

तुम्हारा, प्रीतीश।

रुक्मी का सारा शरीर पत्र पढ़ते-पढ़ते पसीने से डूब गया। उसने आँचल से पसीना पोंछा और क्षण-भर को बेख्याल-सी बैठी रह गयी। फिर जैसे उसके मुँह से एक कराह-सी निकल पड़ी....माही !, इसलिए नहीं कि माही के लिए उसके मन में दर्द हुआ, या खुशी हुई कि उसका दिमाग ठिकाने आ जाएगा। बड़ी चली थी नखरा करने। इसलिए भी नहीं कि

उसके मन में माही की पोल जान कर घृणा हुई और उसे अपनी सहेलियों से माही के बारे में कुछ कहने का मसाला मिल गया। बल्कि इसलिए कि उसके हाथ के पत्र का रंग धीरे-धीरे जाने कैसे हलका लाल हो गया और उसकी भाषा तार की भाषा हो गयी,—मैं नहीं आ पाऊँगा। काम है। पिता जी आने का प्रबन्ध कर देंगे।—और पहली रात का वह सपना उसके मन पर छा गया,....एक अपनी बात कहनी है, आपसे।—उसने अपने को कितना सँम्भाल कर कहा था। कितने बड़े मानसिक बोझ से मुक्त हो कर वह समर्पित होना चाहती थी।—तो आज ही उसकी कोई जल्दी है क्या? इस समय और कोई बात नहीं!—सहसा वह किसी कीचड़ से भरी जमीन पर फिसल कर ऐसे गढ़े में गिर गयी थी, जिसमें नीचे दलदल-ही-दलदल थी और माही का दोपहर के कमल-सा उदास चेहरा उसकी आँखों में सिमट कर स्थिर हो गया।

●

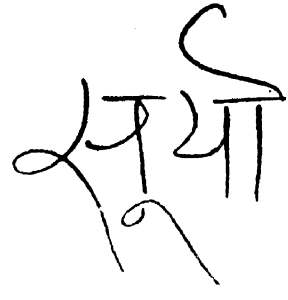

शाम के पाँच बज जाने पर भी सूर्या जी अपने आफिस से नहीं निकलीं तो जगजीत बरामदे की सीढ़ियों से उठ कर दरवाजे के सामने जा खड़ा हुआ, पल भर उनकी ओर देखता रहा, सहसा उसकी दृष्टि दीवार पर टँगी घड़ी पर चली गयी। पेन्डुलम गटर-गट....गटर-गट करता हुआ हिल रहा था और सेकेण्ड की लम्बी सुई एक नम्बर से दूसरे पर छलाँग भरती आगे बढ़ रही थी। दूर चहारदीवारी के पास से लड़कियों के गाने की मद्धिम ध्वनि सुनाई पड़ रही थी। जगजीत कुछ देर ऐसे ही खड़ा रहा। शायद किसी आदेश का इन्तजार करता हुआ, पर कुर्सी में बैठी गुरू जी की दृष्टि उसकी उपस्थिति के आभास से और भी स्थिर हो गयी थी। वह चुपचाप लौटा और बाँस की हथौड़ी से घंटी बजाने लगा। टिन्....टिन्....नि....नि....नि का स्वर लड़कियों के शोर में रोज़ की तरह डूब गया। और देखते-देखते स्कूल का हाता बीरान हो गया।

जानी मौसी अपनी टूटी बाल्टी और बधना कुएँ की जगत से उठा कर बरामदे में रखने के लिए आती हुई पल भर को रुकीं, जगजीत को देखते ही अपने पोपले मुँह से जोर की गाली देती और भुनभुनाती हुई आगे बढ़ गयीं। लेकिन जगजीत ने न तो उन्हें आज रहमान की बीवी ही कहा था, न उनके सिर में अँगुलियाँ ही फेरी थीं। कृष्णा पल-भर को बड़ी गुरू जी के कमरे के बाहर ठिठकी, लेकिन कोई संकेत न पा कर अपना छाता लिये दबे पांव लौट पड़ी।

जगजीत उसे बाहर जाते देखता रहा। कृष्णा ने हाते के ऊँचे चौखट

से एक पाँव बाहर रखा तो साड़ी का निचला हिस्सा उसी में अटक कर ऊपर चढ़ गया और उसकी चिकनी, साँवली पिंडलियों पर धूप की एक तह फिसलती चली गयी। हाते में झुके हुये आम की टूटी डाल के सिरे पर एक कौआ आ कर बैठा, दो बार काँव-काँव बोला, फिर उड़ता हुआ दूर चला गया। जगजीत चुपचाप खड़ा रहा।

आज दो दिन हो गये पर वह यह नहीं समझ पाया कि बीबी जी ने कब नौकरी की और किस तरह बड़ी गुरू जी बन कर इस स्कूल में आ गयीं। शहर के घर का क्या हुआ। वह भी तो इनका अपना ही था और मालकिन ! उसके मन में एक शंका हुई, क्या वे नहीं रहीं ? रहती तो भला ये नौकरी करने पातीं ? उसका मन धीरे से कहीं दूर चले जाने को हो रहा था, पर आफिस बन्द करके एक पुराना छोटा बक्स और कुन्जी ले कर इनके पीछे-पीछे क्वार्टर तक जाने का काम उसी का था, इसलिए उसके पाँव उसी जगह गड़-से गये थे। ठीक साँप और छछुंदर की गति थी उसकी। न कहीं जाते बनता था, न रुकते। बार-बार उसके मन मे आता कि वह 'सूरा बीबी जी' से कुछ कहे, लेकिन क्या कहे....वह यही नही समझ पाता, फिर उसे लगता है, ये पहले ऐसी तो नहीं थीं। कितना बोलती थीं, हँसती थीं, और बात-बात मे....वह चौंक कर कमरे मे घुसा। सूर्या देवी ने शायद उसी को सचेत करने के लिए छोटी सन्दूक का ढक्कन जोर से बन्द कर दिया था और अपनी रेशमी धोती का पल्लू ठीक करती हुई कमरे के बाहर निकल आयी थीं।

सूरज डूबने ही को था। क्वार्टर के बगल वाली बसवट पर चिड़ियों की चूँ-चूँ बढ़ गयी थी। बाँस की एक अगार रह-रह कर क्वार्टर की खपरैल की ऊपरी सतह को खरोंच जाती थी। सूर्या बरामदे मे खड़ी उसी को देखने लगी थी। जगजीत बक्स को आफिस के बाहर रख कर दरवाजा बन्द कर रहा था और वह सोच रही थी कि बीच का कमरा इसी-कारण रात टपकता है। या तो बाँस को कटवा देना होगा, या...."मै कल उसे खींच कर एक तरफ कर दूँगा।" जगजीत बीच ही में बोल पड़ा, क्योंकि वह बक्स लिये

कब से उनके पीछे चुपचाप खड़ा था। सूर्या इस बिनमाँगी सलाह से चौंक कर सिहर गयी। उसका सिमटा-सिमटा-सा चेहरा अपने से घूम कर जगजीत की नन्हीं, तेज आँखों मे समा गया और उसका हाँथ अपने से उठ कर उसके दायें गाल के काले तिल पर चला गया,....तू क्यों इस तरह देखता है, मुझे जग्गी, कोई बात है क्या ? कह तो जरा, तेरी भी सुनूँ। संकोच न कर जगजीत, तुझे मेरी कसम ! और जगजीत उस दिन जैसे घड़ों पानी में भीग कर ठिठुर गया था ...वह जो काला तिल है न....हाँ-हाँ, है तो, क्या हुआ ?....मुझे बहुत अच्छा....जगजीत काँप उठा था और मैं, मैं—सूर्या देवी ने जैसे किसी रेकार्डिंग-मशीन पर बजती हुई इस कितनी पुरानी बात को आज जैसी-की-तैसी सुना हो। उसे अपनी ही आवाज पर कुतूहल हो रहा था और "नहीं, नहीं," बुदबुदा कर वह भीतर से कुछ नकार रही थीं, लेकिन आँखों मे अड गया था एक श्यामल किशोर, सफेद अण्डर-वियर और बनियान पहने हुए, ऐसा सलोना और चिकना बदन और ऐसी सफेद दूध-सी मुस्कराहट कि इससे देर-देर तक बात करने और बेवकूफ बना-बना कर हँसने को जी चाहता है। माँ से कहूँ कि इसे मेरे कमरे के पास सोने के लिए कह दें। रात देर तक पढती हूँ तो दूसरी ओर फुलवारी वाले बरामदे मे सूना हो जाता है। मुझे कितना डर लगता है !—सूर्या के रोएँ इस पुरानी याद से भभर आये थे। इसलिए नहीं कि जगजीत की आँखें उसके पीछे लगी थीं, बल्कि इसलिए कि जब उस दिन चार बजे से ले कर दिन डूबे तक वह अन्तिम बार, हाँ, वह अन्तिम ही था। वह कितनी ही बार रो-धो कर थक चुकी थी और उससे कह आयी थी कि अगर इस बार वह न आया तो फिर आने के लिए नहीं कहेगी।

वह सुनील का रास्ता देखती बैठी रही और पल-पल अपनी कमजोरी छिपाने के लाख बहाने करती रही। लेकिन वह नहीं आया। पिछले कई महीनों से उसका यही हाल था। कभी वह कुछ कहती तो मुँह नीचे किये सुन लेता और उदास-उदास चला जाता। उसके जी में कई बार आया था कि सुनील से कहे कि उसके लिए पहले जैसा

प्यार उसमें नहीं रहा, पर यह सोच कर वह काँप जाती कि कहीं उसकी बात की सच्चाई खुल कर सामने न आ जाए। सुनील के मन में कहीं सचमुच ही यह बात न बैठी हो। न जाने क्यों सूर्या उस समय यह सोच भी नहीं सकती थी और आज वह उसी तरह जगजीत के बारे में भी बहुत कुछ नहीं सोच पाती और उसके आगे गहरा अँधेरा छा जाता है। उसे लगता है, जैसे सुनील के बारे मे सोचते-सोचते वह थक गयी है और कमरे का दरवाजा खुला छोड़ कर किताब सीने से चिपकाये जाने किस लोक में पहुँच गयी है। ....उसके सीने मे अजीब-सा दर्द है और कमर मे फटन-सी होने लगी है—और वह जाने क्या-क्या सोचती चली जाती है। रेवा का चेहरा उसकी आँखों में काँपता है। फिर रेवा के होंठ हिलते है,....'सुनील, क्यों उदास रहते हो तुम, रिसर्च मे डूबे रहने का मतलब यह तो नहीं होता कि हमारे घर का रास्ता ही भूल जाओ। ममी कितना याद करती है तुमको'....सूर्या के कलेजे की जलन उस समय और नीचे उतर आयी थी। अनजाने ही उसके चेहरे पर चिकनाई उतर आयी थी और बदन भारी होने लगा था। उसे हल्का-सा चक्कर आता है, उबकाई छूटती है और वह चौंक कर उठ बैठती है।

सुबह का निर्दोष आकाश उसने खिड़की से देखा था उस दिन, और फूट-फूट कर रो पडी थी।....सुनील तुमसे प्रेम करके मैंने बुरा किया। शायद तुम नहीं जानते कि मैं उस जाति की स्त्री नहीं हूँ, जो मन को समझा लेती है। मैं चाहती हूँ, लेकिन समझा नहीं सकती। मैं अपने ही से लाचार हूँ सुनील!—सूर्या अपने आँचल से अपने आँसू पोछने लगी थी। सफेद धोती का किनारा खून से रँग गया था।—मैं तुम्हें बाधूँगी, तुम्हें धोखा दूँगी, तुम्हें लाचार कर दूँगी। मै बच्चे की माँ बनूँगी, उसका बाप तुम्हे कहूँगी, तब देखूँ तुम क्या करते हो—सूर्या रास्ते पर ठोकर खा कर गिरते गिरते बची आज। तभी जगजीत ने बढ़ कर छोटे कमरे का दरवाजा खोल दिया और वह अँधेरे में घुस कर अपनी चारपाई पर बैठ गयी। जगजीत बढ़ कर खिड़कियाँ खोलने लगा तो उसने कहा, "नहीं, इस समय जाओ!"

जगजीत बाहर चला गया पर सूर्या को लगा वह बाहर नहीं जाएगा।

अगर चला भी जाएगा तो वह किवाड़ों को उठगा कर छोड देगी, जिससे वह फिर अन्दर आ सके। और फिर इस एक बिचार से उसके आगे अपना वही घर नाचने लगा, वही कमरा, वही बरामदा, जिसमें जगजीत खिड़की के नीचे अपनी चारचाई बिछा कर सोया रहता था। वह रात कई बार उठती, बिस्तर के किनारे बैठ कर खिडकी से झाँकती और जगजीत की चारपाई पर पड़ने वाली खिडकी के चौखटे और लोहे के छड़ों मे कैद रोशनी पर उसकी निगेटिव तस्वीर खिच जाती। बालों की लटे, नाक-नक्श और शरीर का तीखा उभार....वह अपने को इधर-उधर करती, जगजीत को देखना भूल कर वह अपने ही को देखती, सुनील का मुस्कराता चेहरा उसकी आँखों मे उतर आता और वह बत्ती बुझा कर उसे मन मे लिये सो जाती। कभी उसी समय उसे पत्र लिखने लगती और देर-देर तक जाने क्या-क्या लिखती रहती। जाने क्यों उसे स्वयं को, देखने पर तुरन्त सुनील का ध्यान हो आता था।

जगजीत बरामदे मे कुर्सी मेज लगा चुका था और महरी ने चाय की केतली और प्लेट-प्याले ला कर मेज पर रख दिये थे। सूर्या की खोखली दृष्टि मे केतली का आकार छाया हुआ था और दो मौन आकृतियाँ इधर-उधर हिल कर उसे मेज पर आ बैठने का संकेत कर रही थी। उसके ख्यालों का सिलसिला फिर टूट गया, वैसे उनमे कोई क्रम पहले भी नहीं था और आज उसके लिए यह सम्भव भी नहीं कि वह शुरू से इन सारी बातों को सोचने बैठे। उसे क्या मालूम था कि एकान्त की खोज में कोशिश करके इतनी दूर के इमकस्बे में बदली कराने पर भी वह वहाँ जा रही है, जहाँ जगजीत बैठा है। वह जिन्दगी से जितना भागना चाहती है, जिन्दगी उतनी ही उसके पीछे पड़ी है। आखिर क्या कहे इसे....वह सोचती हुई चारपाई से उठी और बरामदे में चाय की मेज पर जा बैठी।

महरी चाय बना कर देते हुए पूछ बैठी, "रात डर लगता होगा गुरू जी, कहें तो मैं ही यहाँ सो रहा करूँ। अभी आपके लिए नया-नया घर है।"

"नहीं महरी, डर तो क्या लगेगा...." सूर्या की आँखें जगजीत से मिलीं। वह घबरा कर नीचे देखने लगा तो उसने बात पूरी की, "सूना बहुत रहता है, लेकिन कोई बात नहीं। तुम लोग मेरे लिए परेशान न हो।"

"अरे इसमे परेशानी की क्या बात है गुरू जी। जगजीत हई है। आपके पहले वाली गुरू जी तो इसी क्वार्टर मे आठ बरस रह गयीं। आयी थी तो कैसी दुबली, पतली, छरहरी-सी थी, लेकिन यही ब्याह किया और यही उन्हें बच्चे भी हुए। उन्हीं ने तो जगजीत को रखा था। घर-द्वार का कुछ पता ही नहीं बेचारे को, बचपन से ही मारा-मारा फिरता था। कुछ दिन शहर मे किसी के यहाँ काम कर चुका था....पहले लड़कियो को पानी पिलाता, गुरू जी के घर का काम करता, खाता और यहीं बरामदे मे सो रहता। ठीक इसी खिड़की के पास। उन्हे तो बहुत डर लगता था। रोज कहती, जगजीत न रहे तो मैं एक दिन भी इस भूतखाने मे न रहूँ। एक-न-एक डर की बात वे रोज मुझसे कहती। जाते-जाते वही जगजीत को चपरासी बना गयी।"

"अच्छा," सूर्या ने प्लेट मे प्याले को रखते हुए जगजीत की ओर देखा। स्याही का हल्का-सा पर्दा बरामदे की दीवारों पर सिमट आया था और और जगजीत अँधेरे की इस छत से लटकती सलीब पर टँगा भूल रहा था। सूर्या ने पहली बार उसे आदेश दिया, "रोशनी जला कर मच्छरदानी ठीक कर दो। कल मच्छरों ने सारी रात तंग किया।"

जगजीत चला गया तो सूर्या ने महरी की हाँ मे हाँ मिलाई। महरी फिर बोलने लगी, "उन वाली गुरू जी ने तो क्या बताएँ सरकार, बहुत अच्छा हुआ जो चली गयीं। आप से तो यहाँ लोग इतने डरे है, कि कहते है, 'गूँगी है क्या यह जी', आप कुछ बोला करें। वह नई वाली उपधायिन तो इतनी चुगुल हैं कि दो दिन से रोज दोपहर को मेरे पास आती हैं और आप के बारे में पूछा करती है। कहती थीं, 'शहर से आयीं है न, इनका भी कोई यार होगा वहाँ। बस दो-चार दिन रुको, वह आएगा ही। तब

देखना तमाशा। इनको भी हमारा स्कूल बच्चा-कच्चा दे कर भेजेगा।'

सूर्या को हँसी आ गयी। जैसे किसी बच्चे ने उसका मुँह चिढ़ाया हो, "मेरा कोई यार नहीं महरी, उनसे कहना, यार ही खोजना होता तो यहाँ क्यों आती।" लेकिन अपनी बात के हल्केपन पर सहसा वह ठमक गयी। क्या यह सब मुझे कहना चाहिए! उसने पल भर को सोचा, फिर महरी को बर्तन उठाने को कह कर कुर्सी पर से उठ खड़ी हुई। जाने क्यों उसके बदन में स्फूर्ति की एक झुरझुरी दौड़ गयी थी। वह बरामदे में टहलने लगी।

अभी उसने अपना वह किचन भी नहीं देखा था, जिसमें से दो दिन खाना बन कर आया था। महरी को उसने धुएँ की उस कोठरी में घुसते देखा तो उसे ख्याल आया कि यह चाय-खाना वह किसके पैसों से खा रही है। उसने वहीं से महरी को आवाज़ दी और पूछा तो पता चला कि जगजीत सारा सामान खरीद कर लाया था और गुरू जी ने ही उसके लिए पैसे दिये थे। उसके होठों पर एक हल्की-सी मुस्कान छा गयी, "मूर्ख कहीं का।"

वह तेजी से अपने कमरे की ओर गयी। जगजीत लालटेनें साफ करके जला चुका था। उनकी लौ कम करके जगह-जगह रखने ही जा रहा था कि सूर्या को कमरे में आता देख, एक ओर हट कर खड़ा हो गया। उसके मन में आ रहा था कि वह उसे जी भर कर पीटे और जब वह बेहोश हो जाए तो उसे किसी कमरे में हमेशा के लिए बन्द कर दे। लेकिन अंदर पहुँचते ही वह सहम कर आगे बढ़ गयी। बेकार ही अपने कपड़े इधर-उधर करने लगी। जगजीत दो-तीन जगह बत्तियाँ रख कर कमरे के सामने जा बैठा। सूर्या का संकोच फिर क्रोध में बदलने लगा। उसने वहीं से पुकारा, "जग्गी।"

"जी!" कह कर जगजीत पागलों की तरह पास गया। लेकिन वह फिर चुप रह गयी। पल भर वह खड़ा रहा। सूर्या ने कुछ रुपये उसके हाथ में थमाये तो वह बोल पड़ा, "क्या ले आना है?"

"तुम कुछ लाये थे न!" वह फिर लौट पड़ी और दूसरी ओर के आँगन में चली गयी।

इस ओर भी एक छोटा-सा बरामदा था, जिसमें एक आराम कुर्सी पड़ी थी। सूर्या को पहले वह कुर्सी बड़ी गन्दी लगी थी, पर इस समय वह उसी में धँस कर बैठ गयी। पश्चिम की दीवार के ऊपर आसमान का भूरा टुकड़ा अभी हल्की रोशनी का आभास दे रहा था। चुपचाप उसे देखने में जाने क्यों खुशी हुई उसे। देर तक बैठी उसे देखती रही।

तब वह सत्तरह-अठारह की रही होगी। कालेज से लौटने पर उसने एक दिन देखा कि उसकी लान पर एक लड़का पानी छिड़क रहा है और सूर्या की माँ खड़ी उसे काम समझा रही है। सूर्या को जाने क्यों उसे देख कर हँसी आ गयी थी। क्योंकि उसे मालूम था कि उसकी माँ ऐसे ही रास्ते चलते लोगों में से घर का नौकर चुन लेती थी, जो कभी-न-कभी घर का कोई सामान ले कर चंपत हो जाते थे। उसने बिना कुछ सोचे-विचारे कह दिया कि, "इसे कहाँ से पकड़ लायी हो, किसी दिन कुछ ले कर यह भी चम्पत होगा तो पछताओगी।"

जगजीत ने इस बात को माँ से भी ज़्यादा नजदीक से सुना और इसके पहले कि सूर्या की माँ कुछ उत्तर दे, वह चुपचाप अपना काम बन्द करके पानी का झाला लिये लान से बाहर निकला और उसे उसने बीच के रास्ते पर रख दिया। वहीं से अपना गमछा उठाया और हाथ-मुँह पोछता बाहर की ओर चल पड़ा। सूर्या की माँ ने मकान के बरामदे ही में से आवाज दी, पर वह रुका नहीं। सूर्या की आंखें माँ से मिलीं तो एक अजीब-सी स्थिति पैदा हो चुकी थी। सूर्या शरमिन्दा थी। इसलिए वह दौड़ कर जगजीत को बुला लायी। जगजीत माँ के सामने आ कर रोने लगा। फिर किसी तरह चुप तो हुआ, लेकिन वह बोला कुछ नहीं।

तब से इन दस वर्षों में जीवन ने क्या-क्या देखा! सूर्या उस एकांत बरामदे में बैठी यही सोच रही थी।—उस पहले ही दिन जगजीत के साथ की इस घटना ने उसे माँ का कितना प्रिय पात्र बना दिया था। उसे वे घर की सारी चाभियाँ दे जाती थीं। दूसरा कोई तो घर में था नहीं।

पिता बचपन में ही मर चुके थे। इसलिए मालिक था जगजीत। जब माँ कहीं बाहर जातीं तो वही घर का पूरा इन्तजाम करता। मुझे तो कभी पता भी नहीं चला, कि मैं कैसे और किन परिस्थितियों में जीवन व्यतीत कर रही हूँ। इसलिए जब सुनील से मेरा परिचय हुआ तो सहसा वह मेरे जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई बन गया। सुनील माँ के कारण ही शायद पहली बार घर आया था, और जो इस तरह मेरे घर आता था, वह घर ही का बन कर रह जाता था।

सुनील स्वभाव के साथ शरीर से भी मोहक था। मुझे याद नहीं कि कैसे, पर हँसते-खेलते हम एक दूसरे के बन गये थे। सुनील बिना किसी संकोच के बाहों में भर कर मुझे चूम लेता था और मैं बेझिझक उसकी गोद में बैठ कर उससे लिपट जाती थी। कभी-कभी तो वह हैरान हो जाता और मैं उसे नहीं छोड़ती। जगजीत ने कई बार हमें इस तरह देखा और सिर नीचा किये लौट गया। न उसने कभी कोई चर्चा किसी से की, न मैंने ही इस पर कोई ध्यान दिया। बाद मे मुझे पता चला कि वह सिर्फ कर्ता है उस सब का, जो उससे कहा जाए। न कहने पर वह कुछ न करता। —सूर्या को आदमी के स्वभाव पर हैरत होने लगी। जाने क्यों वह जगजीत की तुलना अपने से करने लगी। जैसे कुछ चाहने की इच्छा करते, उसे चाहते-चाहते वह इतनी कमज़ोर हो गयी थी और जगर्जात अब भी मन के द्वारों को बन्द किये वह सब करने मे समर्थ था, जो उससे कहा जाए।—सूर्या को अपनी कमज़ोरी पर तरस आने लगा था, तभी उसकी दृष्टि फिर पश्चिम की दीवार पर चली गयी। बादलों के काले टुकड़े दीवार के ऊपर आ सटे थे और वह गहरे अँधेरे का एक हिस्सा बन गयी थी। उसकी बगल वाले कमरे के दरवाज़े के मद्धिम प्रकाश में एक परछाहीं काँप-काँप जाती थी....यह जग्गी ही है, शायद बिस्तर ठीक कर रहा है, या मच्छरदानी मे बाँस बाँध रहा है। उसने घूम कर दरवाजे की ओर देखा, जगजीत एक हाथ में स्टूल, दूसरे में लालटेन लिये खड़ा था।

"यहाँ रोशनी रख दूँ, बीबी जी ?" यह कहते हुए अचम्भा हुआ उसे

कि यह 'बीबी' कैसे निकला उसके मुंह से और सूर्या ने कुर्सी से उठते हुए तीखे स्वर मे उत्तर दिया, "सूरा बीबी जी कहने में डरते हो क्या ?" फिर वह कमरे में अन्दर घुसते-घुसते कहती गयी, "कोई ज़रूरत नहीं, इधर के दरवाज़े को ठीक से बन्द करके छोड़ दो !"

जगजीत डर के मारे काँपता हुआ बाहर चला गया। उसने अपने शरीर से साड़ी नोच कर फेंक दी, फिर ब्लाउज़ के बटन एक....दो....उसे सहसा याद आया कि कमरे में रोशनी है और खिड़कियाँ खुली हैं। वह एक सफेद साड़ी निकाल कर नहान घर में चली गयी। कपड़े उतारते उतारते उसे माँ का ध्यान हो आया। अक्सर वह बिना कपड़े लिये ही बाथ में घुस जाती थी। जब टब मे बैठ कर बड़ी देर नहाते-नहाते उसे कपड़ों का ध्यान आता तो वह माँ-माँ पुकारने लगती थी। माँ कभी-कभी तो एकदम निसंकोच कमरे में घुस आती थीं। कपड़े रख कर उसकी पीठ पर दो-चार बार हाथ फेर कर कहतीं, "कब से डूबी पड़ी है, इस पानी मे, बीमार पड़ेगी क्या !" और वे दरवाज़ा खुला छोड़ कर हो चली जाती थीं। ऐसे ही एक दिन की बात सोच कर वह आज भी डूबने-उतराने लगती है।

सुबह आठ ही बजे वह नहानघर में घुसी थी। उसे यह भी नहीं मालूम था कि रवि दादा इसी बीच बनारस से आ गये हैं और माँ उनके साथ बातों में लगी है। उसने कई बार माँ-माँ पुकारा और यह सोच कर कि माँ आती होगी, उसने नहान घर का दरवाजा चौपट खोल दिया। पर देखती है, जगजीत सामने कपड़े लिए खड़ा है। पल भर उसे कुछ भी मालूम नहीं हुआ, लेकिन जैसे ही पानी की बालों मे अटकी हुई एक बूंद उसके माथे से होती हुई टपक कर उसके शरीर पर गिरी, उसने झपट कर दरवाज़ा बन्द कर लिया। कुछ देर वह घुटनों में धँसा अशक्त पड़ी रही, पर जगजीत कब को कपड़े वही टाँग कर चला गया था।

आज कपड़े बदलते-बदलते उसके जी में फिर एकाएक माँ को पुकारने की बात कौंध गयी थी,....पर माँ ? आज वह एक प्रश्न चिन्ह बन गयी है, उसके लिए। चाहे सुनील के कारण ही सही, पर उसने कभी बुद्धि

से माँ के बारे में नहीं सोचा। सुनील तो कहता था,....फिर सुनील के कहने की चिन्ता मुझे क्यों होने लगी। माँ भी स्त्री ही थीं, उनके भी तो मन था। अगर रवि चाचा के साथ उनके सम्बन्ध थे तो इसमें मेरा क्या दोष था, जो सुनील इस तरह उदास हो गया....आखिर इसमें मेरी क्या ग़लती थी ! या मुझसे ऐसा क्या बन गया था, जो सुनील के मन में बर्फ़ की परतें पड़ गयीं ! वह आखिर क्यों कहता है कि उसका मन कुछ करने को नहीं होता....कोई भी काम नहीं....क्या होगा यह सब करके ! करने वालों की क्या कमी है। न घृणा, न स्नेह, कुछ भी नहीं। मुझसे सम्बन्ध तोड़ कर ही वह खुश हो जाता।

—रेवा भी शायद हार ही बैठी थी। सुनील का दर्द वह समझ भी क्या सकती थी और उसके पास मेरे जैसा समय कहाँ था, जिन्दगी बरबाद करने के लिए।—वह कपड़े बदल कर बाहर निकली तो खाने की पूरी तैयारी हो चुकी थी। महरी और जगजीत शायद किसी आदेश की प्रतीक्षा में थे। वह बिना बोले अपने लम्बे बालों की चोटियाँ समेटती हुई बाहर के बरामदे में आ गयी और सीढ़ियों से उतर कर सामने वाले खेल के मैदान की ओर चली गयी।

जगजीत के मन में आया, वह सूर्या के पीछे-पीछे जाए ! जाने क्यों मालकिन (सूर्या की माँ) की बात उसके कानों में बज उठती थी,....इसे पल भर को भी अकेले न छोड़ना—

—वे दिन थे भी ऐसे ही भयंकर।—जगजीत उसे सोच कर आज भी डर गया—जाने कब इनको क्या हो सकता था। ये खुद क्या नहीं कर सकती थीं। उस दिन सुनील बाबू किसी तरह रिक्शे में बैठा कर लाये थे। इनका सिर चोट से भरा हुआ था। शायद कई दिन के इन्तजार के बाद बीवी जी खुद उन्हें बुलाने गयी थीं और वहीं किसी बात पर अपना सिर दीवार से टकरा दिया था। मालकिन कितनी परेशान थीं, पर उनका साहस न होता था, कुछ कहने का। सुनील बाबू कुछ बोले नहीं, चुपचाप खड़े रहे। जब डाक्टर आया तो मालकिन ने बेहोशी की बीमारी

की बात बना कर दवा शुरू करायी थी। फिर तो ये देर-देर तक बेहोश रहती थीं। कभी बैठे-बैठे फूट-फूट कर रोने लगतीं और कभी अपने बालों को नोचने लगती थीं। मालकिन के सामने आने पर इनकी हालत और बिगड़ जाती थी, इसलिए वे दूर आड़ में खड़ी बिसूरतीं और बिना खाये रात-दिन काट देती थीं।

—कभी रात-रात भर ये बिस्तर में बैठी रहतीं और लेटतीं भी तो चौंक कर उठ बैठतीं,....'जग्गी देख यह आँचल....देख जग्गी ! मेरी आँखों से खून आ रहा है ! कभी देखा है तूने ऐसी बीमारी ?' और आँख फाड़ कर उस आँचल को देखती रहतीं, देखती रहतीं। फिर धोती के उस सिरे को फाड़ कर तकिये नीचे रख लेतीं और लेट जातीं।

डाक्टर आते, जाते। दवायें आतीं, फेंकी जातीं। घर में सियापा छाया रहता। कहीं अगर एक प्लेट भी खनकती तो लगता, जैसे बादल का कोई टुकड़ा टूट कर धरती पर आ गिरा हो। इस सब के बीच वहो था एक—जगजीत, आँखें पसारे सूर्या के हर कदम पर निछावर हो रहा था। वह अगर कुछ कहती तो उसी से, सुनतो तो उसी की।

एक दिन आधी रात के बाद सूर्या एकाएक बिस्तर मे उठ बैठी थी। वह दरवाजे से चारपाई सटाये लेटा था, उठना ही चाहता था कि देखा वे शीशे में अपना चेहरा देख रही हैं। कपड़ों पर निगाह डाल कर उसे ठीक कर रही हैं; उसे खुशी हुई थी। शायद वे ठीक हो रही हैं। वह चुप-चाप पड़ा रहा, फिर सहसा उसे संदेह हुआ कि कहीं जगजीत जग तो नहीं रहा है; इसलिए जब वह चल कर उसकी चारपाई के पास आयी तो उसने सोने का बहाना कर लिया। सिर उसका अँधेरे में था, इसलिए सूर्या के लौटने पर उसने फिर आँखें खोल दीं और एक टक उन्हें देखने लगा। उन्होंने अपनी साड़ी उतार कर खूँटी पर टाँग दी और ब्लाउज खोलने लगी तो जाने क्यों कपड़े के नीचे से भी उसे शरीर के वे ही अंग खुले हुए दिखाई पड़े, जिन्हें नहान घर में कपड़े देते समय उसने कभी देखा था। फिर सूर्या के शर्मा कर बैठ जाने की घटना का चित्र उसकी आँखों में उभर आया।

एक अजीब-सी गर्मी और घुटन से उसका शरीर पसीने-पसीने हो गया। ब्लाउज उन्होंने खूँटी पर टाँग दिया था और नीचे सिर करके कुछ देखने लगी थी। फिर चोली के पिछले बन्द भी पट से खुले, पर आगे वह कुछ भी नहीं देख सका। उसकी आँखे बन्द हो गयी थीं और अपने से रंग बदलते जाने वाला एक पर्दा उसकी आँखों पर चढ़ गया था।

क्षण भर बाद उसने आँखें खोलीं। शायद वह बिस्तर में जा पड़ी थी और उसका ही नाम ले कर धीरे-धीरे पुकार रही थी। वह अपने को सँभालने में देर कर रहा था और वह आवाज़ इस तरह दे रही थी, जिसे बगल के कमरे में सोई माँ न सुने। वह किसी तरह जा कर उनके बिस्तर के पास नीचे दरी पर बैठ गया था और वह पूछ रही थी, 'तुम्हें यह तिल बहुत अच्छा लगता है न, जगजीत!' वह चुप था, लेकिन चादर के नीचे से अभी पल भर पहले की उनकी शक्ल उसकी आँखों में नाच रही थी। उसे डर बहुत लग रहा था, पर धीरे-धीरे उसकी पहले की हालत में सुधार भी होता जा रहा था।

"जग्गी कुछ बोलो भी!"

फिर क्षण भर खामोशी के बाद उसने सिर्फ इतना सुना था, "तुम मुझे एक बच्चा...." और सूर्या की फटी-फटी-सी आँखों में वही पुरानी बहशत उतर आयी थी, जिससे लोग महीने भर से परेशान थे। आँखों के डोरे लाल हो उठे थे और जगजीत थर-थर काँपने लगा था। वह सूर्या के बाहुओं में जकड़ उठा था। कानों में सर्प की-सी फुफकार सुनाई पड़ने लगी थी और उसे इतना ही लगा था कि कोई कह रहा है, "जग्गी मुझे लो.... लो जग्गी!" फिर जैसे तूफान की एक ऐसी आँधी चल पड़ी थी कि दोनों जाने कहाँ-कहाँ उड़ते चले गये थे। कितनी ऊँची पानी की दीवार उनके ऊपर बह चली थी, हुचुक-हुचुक कर। उसकी साँसे डूबने को हो गयी थीं।

सुबह तूफान के बाद की धरती थी और वैसा ही आसमान। जगजीत एक हलकी-सी हिलती पत्ती को देख कर सिहर उठता था और सूर्या सुबह की किरणों-सी हँस-हँस कर माँ की छाती से लग जाती थी। वह कंधे पर

झाड़न रख बरामदे में से जा रहा था तो सूर्या को अपने से परे करते हुए मालकिन ने कहा था, "जगजीत, यह लिली देखी तुमने, किसी ने गमले को धक्का दे कर फोड़ दिया है। अभी इसका गमला बदल दे, नहीं तो सूख जाएगी।" उसकी सूर्या बीबी जी पैरों की चप्पल फर्श पर घसीटती हुई नहान घर की ओर चली गयी थीं। जगजीत स्टोर से नया गमला ले कर उसी समय इस काम में लग गया था और महीने भर बाद जब उसमें कली आ गयी, तो सूर्या उसे बार-बार अपनी अंजली में लेती, देखती, फिर गम्भीर हो कर छोड़ देती।

उदास सुनील बाबू फिर आने लगे थे। सूर्या उनके साथ कभी-कभी बाहर भी चली जाती थी, पर उसके पाँव पहले की तरह उखड़े-उखड़े नहीं पड़ते थे। ठीक नपे-तुले ढंग से जमीन को तजबीज कर वह सुनील के साथ बाहर जाती। इधर माँ के कमरे से सटा सूर्या का कमरा था और उस कमरे से सटा फुलवाड़ी वाला बरामदा। रोज़ सूर्या की छाया-आकृति खिड़की की सलाखों की कैद से रोशनी में पड़ती, मजबूत लोहे की छड़ें गल जातीं, फिर क्षण भर बाद कोई हाथ जगजीत को लिये कमरे के अँधेरे में घुस आते।

अभी बरामदे में बैठे जगजीत की आँखो के आगे यही तस्वीरें आ-जा रही थीं,—आखिर वह बच्चा हुआ क्या? सूरा बीबी जी ने एक दिन उससे यही तो कहा था, "जग्गी तू यह रुपये ले और कहीं ऐसी जगह चला जा कि माँ तुम्हारा पता भी न पा सके, वर्ना तुम्हारे लिए जान का खतरा है। मेरे पेट में तुमसे बच्चा....!" वह उसी रात के अँधेरे में रुपये खिड़की से उनके कमरे में फेंक कर वहाँ से चला आया था और इस स्कूल में नौकरी करने लगा था।

उसके जी में आज जाने क्यों बार-बार आता है कि वह सूर्या से पूछे कि वह बच्चा कहाँ है! फिर वह सोचता है कि भला वे क्या सोचेंगीं। उस काले तिल वाली बात के अलावा कभी उनसे कुछ और कहा है कि आज ही...., पर इतना सच है कि वह सूर्या को देखते ही चुपके से

कब का यहाँ से खिसक गया होता, अगर यह एक प्रश्न उसके मन में बार-बार न उठता होता ।

इधर सूर्या की हालत उस मकड़ी की हो गयी थी, जो अपने ही जाले में उलझती जाती है । लड़कियों के स्कूल के इस सूने मैदान में वह अपने ऊपर ज़ोर-ज़ोर से हँसना चाहती है, लेकिन उस लड़की पर उसे क्रोध हो आता है, जो बिना पल भर चैन लिये अपने मन की करती ही चली गयी थी....पगली कहीं की !—उसका मन करुणा से भर आया। अब उसने उस दीवानी मीरा को अपने सीने से सटा लिया था और उसके साथ स्वयं झर-झर रो रही थी....काश, वह उसे शान्ति दे पाती ! काश वह सुनील होती तो उसे युग-युग के लिए अपने अंक में छिपा लेती । प्यारी सूर्या, माई लव, माई स्वीट हार्ट....तू मेरे दिल में समा जा सूर्या। देख, मैं कितना वीरान हो गया हूँ, तेरे बिना....वह मन-ही-मन बोल उठी थी कि उसका पैर एक नन्हें-से गढ़े में पड़ कर मुरकने से बचा और वह फिर अध्यापिका बन गयी ।

—लड़कियाँ इसी मैदान में खेलती हैं....कहीं किसी का पैर टूट गया तो ? कल सबसे पहले इसे ही ठीक कराना होगा—लेकिन फिर भोली बन सूर्या कुछ दूर उसे उदास खड़ी दिखाई पड़ी,....तुम्हारी माँ ने सारी बातें जान ली न सूर्या ! देख एक लम्बी साँस ले कर पहली बार तुमसे कट कर तनिक परे खड़ी हैं । बीच में बरामदे का पाया है । और वह छिपे-छिपे माँ की प्रतिक्रिया देख रही है । 'तू इसी तरह सुनील की प्रतिक्रिया भी देखेगी । तूने सब को लाचार कर देने के लिए ही तो किया है, यह सब ।

माँ ने तुरंत सुनील को बुलवाया था । सूर्या को कमरे में बैठे बैठे ही लगा था, जैसे सुनील उसकी माँ की बातों से अलग नहीं जा पाया....बद्धू और कमज़ोर आदमी....इन्कार तो वह कर भी नहीं सकता था । भ्रम की जमीन उसने होशियारी से बना कर, उसमें शंका के बीज पहले से ही डाल रखे थे । कुछ दिन पहले अंकुर का संकेत भी उसने सुनील से कर दिया

था, लेकिन उसके बाद ही जब खुशी के उच्छवास में फूली उसकी माँ ने उसे गोद में भर कर कहा कि दो-तीन दिन में ही तुम्हारी शादी कर दूँगी तो सूर्या की रही-सही शक्ति उसके हाथ से छिन गयी....जाने क्यों एक मिट्टी का नन्हा घरौंदा बिखर कर धूल का ढेर हो गया। पहली बार उसे लगा कि यह सचमुच उसे क्या हो गया ! जिस सुनील के स्पर्श किये हुए कपड़े तक उसके रोम-रोम को सिहरा देते थे, उससे शादी की बात पक्की हो जाने की बात सुन कर वह डाल से लटकी हुई सूखी कली की तरह रूखड़ी हो गयी।

सूर्या हँसने लगी, फिर उसे स्थिति का ख्याल आया, उसने घूम कर इधर-उधर देखा,....कोई है तो नहीं, वर्ना समझेगा यह पागल है.... लेकिन इस अँधेरे में कौन होगा ! उसने बड़े अनुभवी विचारक की तरह सिर हिला कर बताया कि ये हैं जीवन की सच्चाइयाँ,....देख लिया तुमने स्वीटों, अगर मैंने कहा होता कि यह सब न करो तो तुम तुनग कर उस कोने में जा खड़ी होती। पीड़ा और दुख का नाम ले कर जार-जार रोती, राधा बन जाती....राधा ?—वह रुक गयी, सच वह राधा ही बनने के योग्य थी, युग-युग तक प्रेम के सिंहासन की साम्राज्ञी बनी रहती।....लेकिन तुम तो मरी जा रही थी पटरानी बनने के लिए....आखिर मिला कुछ तुझे ! तू खुद अपने से ही ऐसी उदासी क्यों हो गयी। अभी तो सुनील से तुम मिली भी नहीं। कौन जाने वह प्रेम-विभोर हो कर तुझे गले से लगा ले। उसे या दूसरे किसी को भी सच्चाई का ज्ञान कहाँ ! जो एक काँटा था, उसे तो तुमने....फिर भी मैं पुलकित नहीं हो सकूँगी, जाने क्यों मेरा उत्साह ....ओह ! मुझे कोई बचाए, बचाए....वह भीतर ही चीख पड़ी। लेकिन बाहर सूर्या गम्भीर हो कर दार्शनिक बन उठी,....परिणाम ही आखिरी सत्य नहीं होते पगली, तूने तो सफलता ही को जीवन का उद्देश्य बना लिया था। हो गयी न सफल. अब ठुमुक-ठुमुक कर नाच बरामदे भर में और फूलों की परी बन जा। लताओं को भेंट न खुशी के मारे। अब तो तू पति के घर जाएगी और गोद भी अपनी भरी ही जान....

इसी तरह सुर्या देर तक टहलती, अपने से बात करती रही। उसने अपनी शादी का पूरा माहौल मन की आँखों से देखा। पार्टी की चहल-पहल देखी, लोगों की खुशियाँ देखी, पर सुनील का चेहरा उसकी नज़रों में एक भी बार नहीं आया। उसे कभी शिकायत भी नहीं रही कि सुनील उसकी ओर से उदास है, या जीवन से ही ऊबा हुआ है? अंत में एक दिन उठा-पुठा कर वह अस्पताल गयी। उसे इतना ही याद पड़ता है कि लोगों ने उसे होश में आने पर बताया था कि बेबी पेट में उलट गया था। किसी तरह आपरेशन से उसकी जिन्दगी बचायी जा सकी थी। उसके बाद उसे याद नहीं कि उसकी सुनील से कभी मुलाकात भी हुई। इस दूरी में उसे घुटन की कमी दिखाई पड़ी, शायद इसी की भूखी थी वह, इसीलिए दूर होती गयी। आज वह कैसी भरी-भरी-सी स्वस्थ और सुन्दर हो उठी है। उसका मन जाने क्यों खुश हो उठा!—जगजीत क्या सोचता होगा उसके बारे में, वैसा पागल है, बुद्धू कहीं का.... उसके चेहरे पर एक अजीब-सा उलाहना उस अँधेरे में चमक उठा और फिर एक बार उसका हाथ अपने दाहिने गाल के काले तिल पर चला गया। उसे ख्याल आ गया कि उसने बड़ी देर कर दी है। वह कदम बढ़ाती हुई क्वार्टर में घुसी, तो उसके दोनों सेवक खाने की मेज़ की बगल वैसे ही चुपचाप बैठे थे।

सूर्या सीधे खाने पर बैठ गयी। महरी शिकायत करती रही, "खाना तो ठंडा हो गया गुरु जी, अब चूल्हा भी बुझ गया है, नहीं तो गरम कर देती। जगजीत पानी तौलिया ले कर खड़ा रहा, पर सूर्या ने उसकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया, न महरी से ही कुछ बोली। खाना खा कर उठी तो उसने सीधे कमरे में जा कर बरामदे की खिड़की की ओर देखा। बाहर अँधेरा था, पर बरामदे की दीवार से कुछ दूर हट कर कमरे की रोशनी खिड़की के चौखटे और लोहे की छड़ों की छाया में उसी तरह कैद थी, लेकिन उसकी छाया ने अपनी आकृति भर के लिए रोशनी के उस मनहूस कारामास को छिन्न-भिन्न कर दिया था। लोहे की मज़बूत

छड़ें जैसे उसके शरीर के स्पर्श मात्र से उतनी सीमा में पिघल कर गल गयी थीं....वही तीखे नाक-नक्श, उलझे हुए बालों की लटें और शरीर का सुघर उभार....सब वैसा ही, बस इस छाया और दीवार के बीच की जगह खाली है। जगजीत इस जगह नहीं सोएगा तो आज रात उसे डर लगेगा।

●

तारों का गुच्छा

रोली आज एक अजीब-सी हैरानी में थी। वही घर, वही बूढ़े बाबा, वही उसका बुलू और दादी, पर रिक्शे से उतरते-उतरते उसका मुँह शर्म से लाल हो गया था, सिन्दूरी लाल। होठों पर बार-बार खुश्की की परत आ बैठती थी, जैसे वह पल भर को रुमाल हटा ले तो लोग उससे पूछ बैठेंगे कि यह क्या रोली, कैसी हो गयी तू !

फिर वह क्या कहेगी लोगों से ! यह सोच कर उसकी जबान तालू से सट गयी थी और रिक्शे के पैसे देते-देते उसका हाथ पल भर को बटुये में शिथिल पड़ा रह गया था। शायद वह पैसों के बजाय साहस बटोर रही थी, जिससे अभी रिक्शे से उतरने पर घर तक जा सके।

बाबा बरामदे में नहीं थे, वर्ना वह बिना उनसे उलझे आगे नहीं जा पाती और अगर जाती तो उन्हें किसी असंभावित घटना का सन्देह ज़रूर होता। इसलिए रोली पैर बढ़ाती हुई अपने कमरे में घुस गयी और अपनी चारपाई पर चुपचाप लेट कर आँखें बन्द कर लीं, फिर दोनों हाथों से उन्हें बाँध लिया, पर अँधेरा वह नहीं कर पायी। एक हल्की-सी मुस्कराती आकृति, "कैसी अनोखी हो तुम, देखो मेरी ओर....!" उसे क्या हो गया था। जैसे किसी तूफान से घबरा कर,....सच वह तूफान ही तो था....उसकी निर्भीक आँखों में कैसी रोशनी थी....वह उसके सीने और गले में अपने चेहरे को रगड़ती रह गयी थी। उसके पतले होठों की थिरकन देख कर आँखें बन्द कर ली थीं, "देखो मेरी ओर !".... ओह नहीं, नहीं,—उससे नहीं देखा जाएगा, बिल्कुल नहीं। इस उमड़ते भाव-लोक में रोली का जीवन एक ऐसी

मोमबत्ती के सामान हो उठा था, जिसमें अभी-अभी किसी ने दियासलाई की एक तीली घिस कर लगा दी थी और जलन से वह उल्टी-पुल्टी गलती जा रही थी।

झुकी हुई शाम के अँधेरे में कुछ ऐसे नूपुर बज रहे थे, जिसे रोली ने इससे पहले कभी नहीं सुना था। वह कान लगा कर सुनने लगी।

नल का टैप कुछ ढीला बन्द था। पानी छिरछिराता हुआ गिर रहा था, जैसे सावन की तेज़ हवा में बूंदों के तिरछी हो जाने से गिरता है। जाड़े की इस सिसियाती शाम में भींगने का सूना सुख! रोली मन-ही-मन मुस्कराई, होठों पर हाथ फेरा और तनिक उठ कर अपने लम्बे कुरते की शिकन देखने लगी। उसे कुछ अजीब-सी चुभन और भारीपन महसूस हुआ। वह उठ बैठी, सामने शीशे में उसके सूजे, नीले होंठ; पल भर को उन्हें देखती रही। आँखों की कोरें लाल हुईं, अभी उसे इस पर विस्मय ही हो रहा था कि उसकी दृष्टि डूब गयी—नीर भरे-भूरे बादलों में तारों की तरह और वह फूट-फूट कर रो पड़ी। तभी बाबा ने बाहर से पुकारा। दादी मटर की फलियाँ निकालती हुई बड़बड़ाईं। बन्नी नल के नीचे बाल्टी लगा कर टैप को पूरा खोलती हुई भागी आयीं और रोली को देख कर हक्की-बक्की-सी रह गयी।

"यह क्या दीदी, अरे...."

"कुछ तो नहीं।"

"देखो मेरी ओर!"

"नहीं देखा जाता बन्नी।"

"सच!"

"सच रे!" रोली बन्नी के सीने में सिर दे कर सट गयी।

"मैंने जो चिट्ठी डाली थी, मिल गयी थी?"

"हाँ, उसी के माँगने में तो...." रोली के मन में वह पूरा दृश्य उग आया। वे कितनी दूर-दूर बैठे थे। कॉफी का सिप लेते-लेते उसने एक जेब में हाथ डाल कर वह पत्र निकालते हुए कहा, 'यह क्या लिखती हो, कुछ

सोच कर या....' न जाने कितनी अभिभूत और पराई-सी हो कर मैं उस पत्र को लेने झपटी थी, शर्म के मारे, लेकिन पत्र की जगह....मेरी ही ग़लती थी....मैंने ही पहले....'' रोली बटी हुई रस्सी की तरह भींग कर ऐंठ गयी और बन्नी ने उसके सिर को हाथों से हटा कर कहा, ''चलो, बनो नहीं दीदी, इतना झूठ !''

रोली का कंठ अनायास बज उठा, एक मासूम भुलावे के लिए, ''आखिर तू समझ गयी न, मैंने सोचा, देखूं तू क्या कहती है !''

''अच्छा, तो अब डलवाना चिट्ठी !''

''किसको ?''

''उसी टेढ़े-मेढ़े, उलटे-सीधे, काले, झबरीले बालों वाले को। क्या समझती हो, मैं जानती नहीं। वही न, जिसकी तसवीरें अपनी कापियों पर बनाती रहती हो।''

''धत् तेरी शैतान की नानी, बड़ी चली चिट्ठी डालने वाली। समझती भी है कुछ ?''

''अच्छा, तो मैं आज से नहीं बोलूंगी आप से।'' बन्नी मुंह फुलाये बाहर निकल गयी। रोली पल भर को फिर चुप रह गयी।

बाबा ने फिर पुकारा। वह भागती हुई बाहर आयी, उनकी पीठ से सट कर उनका सिर सहलाने लगी।

''स्कूल से लौटी.... !''

''स्कूल नहीं, कॉलेज, आप हमेशा....''

''अच्छा भाई, कॉलेज ही सही। लेकिन यह तो बता कि कपड़े बदले, हाथ-मुंह धोया !''

''अभी नहीं।''

''तो फिर क्या कर रही थी ?''

''कुछ नहीं।''

''यह कोई अच्छी बात है, रोली !''

''मैं सब अच्छी ही बात क्यों करूँ ?''

"अरे, यह क्या कह रही है ?" दादा मुड़ कर उसे देखने ही जा रहे थे कि बन्नी के हाथ में चाय का ट्रे दे कर दादी बोल उठीं, "लो पहले चाय पी लो तो पीछे गप्प लड़ाना। अब तो हो गया कल सुबह तक का यह झगड़ा।"

बाबा के लिये जैसे यह कोई आवाज़ ही नहीं थी, कोई नयी बात तो है नहीं और फिर ऐसे ख़ामोश हो गये, जैसे उनसे कुछ कहा ही न गया हो। लेकिन रोली की बात उनके दिमाग में चक्कर काट रही थी,....."मैं सब अच्छी ही बात क्यों करूँ ?" उन्होंने हरे मटर के दाने चम्मच से मुँह में डाल कर कहा, "ठीक ही तो कहती हो, फिर बुरी बातों का क्या होगा, उन्हें भी करने वाला तो कोई चाहिए।" और हो....हो....करके हँसने लगे।

रोली जल्दी-जल्दी मटर निगल रही थी, क्योंकि बन्नी और दादी के आगे वह इस बहस में पड़ना नहीं चाहती थी। तभी बुलू आ गया। रोली ने जल्दी-जल्दी चाय निगलते हुए कुछ मुँह जलाया, कुछ हाथ।और दादा के लाख मना करने पर भी उसे ले कर लान में उतर गयी। फिर क्या था, जब तक पसीना न छूट जाए, थक कर हाँफने न लगे, खून के तेज़ दौरे से चेहरा सिन्दूरी न हो जाए ! फिर थक कर चूर होने पर बाबा तो हैं ही शिकायत सुनने के लिए, "दद्दू, मुझे मना क्यों नहीं किया। देखो, मैं कितनी थक गयी, अब पढ़ूंगी क्या खाक !" और अगर कहीं चोट आ गयी तो जैसे दादा ने ही उसे लगा दी हो। लेकिन आज वह बात नहीं थी, वह तो सिर्फ बन्नी की नुकीली आँखों से बचना चाहती थी। बाबा को अपने मन का आभास देना चाहती थी, इसलिए लान की हल्की, हरी रोशनी मे बुलू के लाख कूदने-फाँदने पर भी वह उसके पास नहीं गयी और दबी आँखों से बाबा तथा दादी के बगल खड़ी बन्नी को देखती रही। थकन और आलस से उसका शरीर टूट रहा था। रह-रह कर एक अव्यक्त प्रसन्नता और उच्छ्वास उसकी साँसों से फूट पड़ता था, जैसे वह साँस लेना बन्द कर के काफी देर बाद साँस ले रही हो।

बन्नी चाय का ट्रे ले कर अन्दर चली गयी और दादी तख़त पर पड़ी

ऊनी चादर को दादा के पैरां पर डालती हुई, पल भर को रोली को देखती रहीं। जैसे जीवन में और कुछ देखने लायक न हो। फिर अन्दर चली गयीं और रोली का रैपर हाथ मे लिये लौटीं। इसी बीच रोली लान से भाग कर बाबा की कुर्सी के हत्थे पर जा बैठी थी।

"तुझे कुछ काम नहीं है क्या, आज ?" वे उसके कन्धे और हाथों को रैपर से ढँक रही थीं।

रोली कुछ बोली नहीं। बाबा चुप रहे।

दादी लौट गयीं। चूल्हे पर सब्जी के छौंके जाने की आवाज़ और नल की टैप के नीचे भरी हुई बाल्टी मे पानी के गिरने का स्वर! हवा की निचली सतह में एक भारीपन बढ़ता जा रहा था।

रोली भी उठ कर अपने कमरे में चली गयी। एक बार अपने कालेज के कपड़ों पर निगाह डाला, कपड़ों की जगह हाथ, लम्बी अँगुलियाँ, हल्के रक्तिम नाखून। उसके रोएँ भभर आये। उसका अस्तित्व चीत्कार कर उठा। उसने आँखें बन्द कर लीं। पलकों के नीचे एक चेहरा उग आया—छोटा-सा, प्यारा-प्यारा, झबरीले, उलझे-उलझे बालों वाला।

आज ही उसकी समाज-शास्त्र की आध्यापिका ने उसकी उम्र की लड़कियों के स्नेह-सम्बन्धों की चर्चा करते हुए दर्जे में समझाया था....इस अवस्था का स्नेह कभी टिकता नहीं।....वह मात्र कल्पना और शरीर-सुख से प्रेरित होता है,....यह ग़लत है, यह कैसी झूठी बात है। वह मन-ही-मन बुदबुदाई और पल भर को अपनी पढ़ने की मेज के पास बैठ कर अपने हाथों को देखती रही। साँवले रंग की भरी-भरी कलाइयाँ, हथेली, अँगुलियाँ, और नाखून....उनसे परे अस्त-व्यस्त मेज और टेबिल-लैम्प की गर्द भरी शेड; पल भर को सब कुछ भूल कर वह यही सोचती रही। फिर धीरे-धीरे सामने एक लम्बा मेज़, कॉफी की छोटी केतली, दो सफेद दूध से धुले प्लेट-प्याले और हल्के आसमानी रंग का ऐश-ट्रे, पतले लाल होठों की पकड़ मे सिगरेट और धुआँ....धुआँ....धुँधलका; एक ऐसी अनोखी दृष्टिहीनता, जिसमें कहीं भी कोई धब्बा नहीं, कोई अँधेरा नहीं, बस दो आँखें—दूर तक, मन प्राण

तक धँस जाने वाली आँखें। रोली को लगा, जैसे वह अनजाने किसी ऐसी धारा में उतर गयी हो जहाँ के पानी का उसे थाह नहीं। वह घबरा उठी। हाथों से अपना माथा थाम कर बैठ गयी। तभी बन्नी थाल लिये आयी और मेज़ पर रखते हुए बोली, "बस हो गया रोली दीदी, अब घर भर को सताइए नहीं।"

"तू तो बोलने ही वाली नहीं थी।" रोली सयानी आवाज में गम्भीर बनी बोली।

"नहीं रहा जाता न, अगर ऐसा ही होगा तो कल से घर ही रहूँगी। बस आज जाने दीजिए।"

रोली बन्नी को देखने लगी। तभी दादी आ गयीं और बन्नी जल्दी से कमरे से बाहर निकल गयी। दादी चुपचाप रोली की चारपाई पर बैठ गयीं और ऐसे देखती रहीं, जैसे कुछ भी देख न रही हों, या जो देखना चाह रही हों, वह उन्हें दिखाई न पड़ रहा हो।

रोली खा चुकी तो उन्होंने कहा, "अब सो जाओ, मैं सुबह जगा दूँगी।"

रोली अँधेरा चाहती थी, एकदम सूना, सुदूरगामी एकांत, इसलिए लिहाफ में घुस कर उसने बत्ती का स्विच दबा दिया। देर तक उसका मन भटकता रहा। पर वह जो सोचना चाहती थी, वही जैसे हिरन हो गया था। तेज़, थरथराती हुई बिजली की कड़क के बाद का-सा सूना प्रभाव; फिर बहुत नन्हें, नुकीले काँटों की वर्षा, और किसी मसीहा की हत्या के बाद की प्रार्थना और भक्ति में डूबा-डूबा-सा वातावरण। उसे कॉनवेन्ट में याद की हुई एक प्रार्थना का स्मरण हो आया, फिर लार्ड, पवित्र माता, और उनकी गोद का भोला शिशु....उसने कितनी बार सोचा था कि अगर वह मेरे प्रेम को स्वीकार नहीं करेगा, उपेक्षा से मुझे ठुकरा देगा, तो कभी निर्लज्ज हो कर उससे एक बच्चा मागेंगी—गोल-मटोल, प्यारा-प्यारा। और वह देर तक लिहाफ के अँधेरे में अपना मातृत्व खोजती रही—एकदम अनोखा मातृत्व, लांछन और समाज की प्रतारणा के दुख में डूबा हुआ।

नाहक ही रोली की आँखों में फिर आँसू उमड़ आये....प्रेम की अभिलाषा या शरीर की कामना के आँसू नहीं, गोद में खेलने वाले नन्हें की सुकुमार छबि के आँसू। दूर स्टेशन के शंटिंग करने वाले इंजिन की सीटियाँ रोली के कान में चुभ कर पार होती रहीं, और उसकी छक्-छक् करने वाली छूछी ध्वनि उसके बिस्तर पर रेंगती रही। वह किसी भी तरह सो न सकी, और धीरे से बत्ती जला कर उठ बैठी। कमरे की दीवारें मुखर हो गयीं। नीचे फर्श पर बन्नी जाने कब आ कर सो गयी थी। रोली ने उसे देखा तो जाने क्यों सहम गयी।

एक दिन, बहुत सवेरे इसी तरह बन्नी को सोते से जगा कर उसने उसके हाथ में एक लिफाफा थमाते हुए कहा था, "धीरे से दरवाज़ा खोल कर बाहर वाले लेटर-बक्स में इसे डाल आ, मैं तेरा कोयला तोड़ कर भट्टी जला देती हूँ। देख, कहीं इधर-उधर न फेंकना इसे।" और, वह कोयला तोड़ते-तोड़ते सोचने लगी थी....मेरे अपरिचित,....यह तो ठीक नहीं लिखा मैंने, कब से जानती हूँ उसे। शायद, जब से अपने को जानने लायक हुई.... पता नहीं क्यों, पर जब भी उसकी तसवीरें अख़बारों में निलकतीं, मुझे लगता, जैसे मेरा कोई ऐसा घर में आ गया है, जिसके कारण यह घर ही सूना था। उसे तो मैं कब से....उसने हाथ की हथौड़ी छोड़ कर अँगुली दबा ली थी। खून उसकी मुट्ठियों की संधि में हो कर नीचे बहने लगा था। बन्नी चीख़ने को हुई थी, पर वह उसे धीरे से मना करके उठ गयी थी....

घाव अब भी पुरा नहीं है, पर दर्द जैसे उड़ गया है, उसका। रोली पल भर को अपनी अँगुली और फिर बन्नी को देखती है। जाने क्यों, उसे लगता है, जैसे उसकी खिड़की के पास तारों से गदराया आसमान झुक आया है और वह खिड़की बंद किये बैठी है। क्यों न, वह तारों का एक गुच्छा तोड़ ले। कहीं उसने माँग ही लिया तो क्या होगा, और वह चारपाई से नीचे उतर कर खिड़की खोल देती है। सचमुच, रेल की ऊँची पटरियों पर तारों का घोल पुत गया है और दूर आसमान के सीमान्त में उसकी नुकीली धार धँसती चली गयी है।

....वह कितनी ऊँची हो गयी इस खिड़की से, सिर्फ छे-सात वर्षों की नन्हीं प्रतीक्षा की दूरी ने उसे इतना ऊपर खींच लिया।....शायद, वह इधर से कभी गुज़रे। यहीं से क्यों, कहीं से भी, किसी भी कोने से जहाँ तक वह देख सकती है, तो वह उसे रोक कर बातें कर लेगी। कह देगी कि वह उस से प्यार....सामने एक तारा लड़खड़ा कर टूटा, जैसे कोई जलती हुई आग की धार उतर गयी हो उसके सीने में। उसने खिड़की के पल्ले उठगा दिये। पल भर को खड़ी रही। फिर लौट कर मेज़ के पास बैठ गयी।

बन्नी रजाई में हिली, भुनभुनाई और फिर नींद में डूब गयी। नल का टैप छिरछिराया, बन्द हुआ, फिर छिरछिराया, और बुलू ज़ोर-ज़ोर से भूँकने लगा। बाबा खाँसने लगे और दादी के करवट लेने से खाट चर-चरा उठी। रोली उठी, उसने दरवाज़ा बन्द किया और फिर मेज़ के पास आ कर बैठ गयी।....सिर्फ इतनी-सी बात के लिए, अपने अनजाने प्रेम को उस पर व्यक्त करने के लिए ही तो मैंने उसे बुलाया था। जाने कितने लोग होंगे ऐसे। अगर सब मेरी तरह हो उठें और सभी उसे बुलाएँ....छी-छी....यह क्या कर लिया मैंने! कहीं उसे भी तो मेरी तरह....?

—कभी वह उसके लिखे हुए काग़ज़ों को सँभाल कर रख सकेगी? उसे और अधिक न जागने के लिए मना करके अपनी बात मनवा सकेगी? उसके उलझे बालों को देर तक अँगुलियों से उलझा-सुलझा सकेगी?....नहीं नहीं, कभी नहीं। वह प्रेरणा नहीं रहेगी तब, साधन बन जाएगी, एक टूटी-फूटी सीढ़ी मात्र। लोग कहेंगे, यहीं, इसी पर पैर रख कर इस महल की ऊपरी बुर्ज पर कोई चढ़ गया था।—उसने अपनी फैली हुई अँगुलियों से अपनी आँखें ढँक लीं। संधि से टेबिल-लैंपों की एक लम्बी कतार दिखाई पड़ी, जैसे हज़ारों बल्ब एक साथ जल उठे हों! उसने घबरा कर बत्ती बुझा दी और लिहाफ में घुस गयी।

रोली सुबह देर से उठी। उसका मन हलका था। उसे हर चीज़ साधारण नज़र आ रही थी। रोज़ की तरह देर से उठने का जो डर उसे अक्सर सताया करता था, आज उसके पास नहीं फटका। बुलू कुयँ-कुयँ करता हुआ पूँछ दबाये-दबाये उसके कमरे में टहलता रहा। उसने एक नज़र उसकी ओर देखा और स्टैन्ड से तौलिया उठा कर बाहर चली गयी। पल भर को एक चेहरा उसकी आखों में आया तो उसने हवा में मुँह चिढ़ा कर मन-ही-मन कहा, "हाँ, हाँ, एक बार नहीं, सौ बार कहती हूँ, मैं तुमसे प्यार करती हूँ, करती हूँ, और करती रहूँगी।" फिर सहसा चेहरे का भाव बदलते हुए कहा, "बड़े आये !"....और उसे अपने पर हँसी आ गयी। शर्म से उसका चेहरा आरक्त हो आया। उसने जल्दी-जल्दी कपड़े ठीक किये और तैयार हो कर कालेज के लिए चल पड़ी।

सूना, उदास, दो कमरे का टूटा- फूटा घर। सामने न कोई फुलवाड़ी, न हरियाली, जैसे इसका बाशिन्दा वर्षों बाद किसी लम्बी यात्रा से लौट कर आया हो। रोली को हिचक नहीं हुई। कल का डर और परसों का संकोच उसके लिए आज पराया-सा हो गया था। उसने दरवाज़ा खटखटाया। एक अधेड़ स्त्री ने दरवाज़ा खोला। रोली को लगा, जैसे वह चौके में से उठ कर आ गयी हों। उसने उन्हें नमस्कार किया, और बगल में खड़े नन्हें बच्चे को गोद में ले कर चूम लिया। तभी वह कमरे से निकला, शायद किसी दूसरे ही काम से, क्योंकि खुली हुई कलम अब भी उसके हाथ में थी, और एक ओर की आँख उसके बड़े-बड़े बालों में छिपी हुई थी। एकाएक रोली को देख कर वह उलझ-सा गया, "तुम, कालेज नहीं गयी क्या ?"

"आज शुरू के कई पीरियड आँफ थे, सोचा..."

"लेकिन यह कितना ग़लत...." वह अपना वाक्य पूरा भी नहीं कर पाया था कि उसकी बीवी बोल उठी, "शुरू कर दिया लेक्चर तुमने ! घर में पहली बार आयी हैं, न बातचीत, न उठना-बैठना, बस ग़लत बात है,

ग़लत बात है। जैसे दुनिया में तुम्हीं तो एक सही हो।"

सब-के-सब बगलवाले कमरे में जा बैठे थे। पर वह उलझा-उलझा-सा कमरे में घूमता रहा और रोली देखती रही पढ़ने की मेज़, सोने की जगह, किताबें, सामान, फिर वह और उसका बच्चा....रोली की नसों में फिर वही रात वाला बहशी खून उमड़ने लगा था....बच्चा....! वह बच्चे को देख रही थी और उसकी बीवी रोली को, उसे और फिर बच्चे को। वह किसी को नहीं, सिर्फ अपने को। उसकी बीवी जानती है, वह घमंडी है, इसलिए कि उसका घमंड उससे टकरा कर काफी हद तक टूट चुका है, इसलिए यह मानना उसके लिए बुरा नहीं; और वह उठ कर चाय बनाने चली गयी।

उसने कनखियों से रोली को देखा। रोली ने स्पष्ट महसूस किया—एक जलती हुई दृष्टि,.... पर वह जलेगी ? कहाँ की बात करते हो ! उसने मन-ही-मन कहा—तैरना न जानते हुए भी मैं डूबने की शंका छोड़ कर तैरने वाली हूँ।

"रात क्या करते रहे, आप ?"

"खूब खुश रहा। देर तक कॉफ़ी-हाउस में दोस्तों के साथ गप्प मारता रहा। सिगरेट पीता रहा और घर लौटा तो खूब खाना खाया। लोगों से गप्प मारी और सो गया। खूब सोया आज रात रोली। सच कहता हूँ, खूब।"

रोली उसे बात करते हुए देखती रह गयी। उसे तुरंत ही लगा, जैसे वह एकदम सहज है, भोला-भाला, मासूम, ठीक अपने बच्चे की तरह।

"आपने कल घर में बताया था कि हम लोग मिले थे ?"

"नहीं तो....कोई ऐसी बात तो थी नहीं।"

"अगर मैं बता दूँ तो ?" रोली जैसे कोई बड़ी तेज़ और शरारत भरी बात कह गयी।

वह एक फीकी हँसी हँस कर बोला, "इसीलिए कहता हूँ कि तुम्हें कॉलेज नहीं छोड़ना चाहिए रोली, तुम में अभी बहुत भावावेग है। ऐसा नहीं कि ये आवेग बुरे हैं, पर इन्हें साँस लेने के लिए जिस हवा की ज़रूरत

है, वह हमारे समाज में नहीं है। मैं कल यही सोचता रहा। सारी रात मेरे आगे एक यही बात रही।"

"तो आप सोये नहीं रात भर ?" रोली भौचक्की-सी बोल पड़ी।

"न सोने की बात आप कहती हैं, यह तो कोई नयी बात नहीं; पर दो पेज भी नहीं लिखा इन्होंने। सोचती थी...." उसकी बीवी चाय ले कर आयी थी और ट्रे एक स्टूल पर सँभाल कर रखते हुए बोल रही थी।

रोली उसे देखती रह गयी। जाने क्यों वह अधेड़ स्त्री उसे इस बार नयी लग रही थी और उसकी आँखों में अधिक रोशनी आ गयी थी। रोली को कुछ भी अपरिचित न लगने की बात जो अभी कुछ देर पहले खटक रही थी, अब जैसे आत्मीयता का सूत्र बन गयी। उसने तो कितनी संभावनाएँ की थीं, कितनी उल्टी-सीधी बातें सोची थीं। वह कुछ बोलना ही चाहती थी कि वे उठीं और बाहर से सिगरेट की डिब्बी और दियासलाई ले कर लौट आयीं और उसके सामने रख कर चली गयीं।

रोली को उसकी बात का ख्याल हो आया, यानी, 'खूब सोया' का मतलब था, कुछ भी काम नहीं किया।

"उसे इस तरह कहो कि छुट्टी के मूड में हो गया था। करने और खाने की चिन्ता से ऊपर।" उसके चेहरे पर एक व्यंग्य की रेखा रोली ने स्पष्ट देखी। उसे दुख हुआ। तभी वह सिगरेट का कश लेते हुए बोल पड़ा, "यह कोई ऐसी सोचने की बात नहीं है। तुम नाहक इसे सोचने के चक्कर में न फँसो। सच्चाई सिर्फ इतनी है कि हमारी कोई भी बात ऐसी नहीं है जो इस समाज की न हो। हम सिर्फ अपनी तरह उसे कहते हैं और जैसा, जिस रूप में कह सकेंगे, कहते जाएँगे और एक दिन हमेशा के लिए सब की तरह हमारी आवाज़ भी बन्द हो जाएगी। यह एक सच्चाई है, जो सहज गति से होगी और होती है। इसलिए इसमें भावुकता का मसाला मिला कर पल भर के लिए ज़ायका बनाने से क्या फ़ायदा ?" वह उदास हो गया। कमरे की मटमैली दीवारें सिकुड़ आयीं और रोली भौचक्की-सी

उसके चेहरे की विरल उदासीनता के जाल में मछली की तरह फँस कर गर्म रेत पर खिंच आयी।

"जाने क्यों, मुझे जीवन में किसी भी प्रकार के तनाव से नफ़रत हो गयी है। मरने से नहीं, अपना सब कुछ दे देने से भी नहीं, पर तनाव और उदासीनता के खोखले आवरण में मैं कुछ अनाधिकार पाने की घोर लिप्सा देखने लगता हूँ। मैं इसी कारण अपने को चारों ओर से बन्द रखता हूँ। तुम जाने कैसे कहाँ से चली आयी !....मुझे दुख होता है कि कहीं...." जैसे वह कुछ कहते-कहते फिर रुक गया हो।

बाहर से बच्चे की रोने की आवाज़ आने लगी। शायद, माँ उसे नहला रही थी।

"आप को बच्चे अच्छे नहीं लगते क्या ?" रोली ने अपने को ठीक से सँभाल कर पूछा।

"क्यों इस तरह पूछती हो ? मुझे स्त्रियाँ बहुत अच्छी लगती हैं। मैं उन्हें बहुत प्यार करता हूँ और बहुत इज़्ज़त देता हूँ रोली।" वह उसकी आँखों में देखने लगा। निर्भीकता की ऐसी तेज़ रोशनी ! रोली दूसरी ओर देखने लगी। "कल सहसा उस घटना के बाद मैंने तुम्हारा चेहरा देखा था, किसी ताज़े-से-ताज़े सुबह के कमल की तरह....।" वह एक बार फिर रुक गया, जैसे वह अपनी ही बातों के घेरे में फँसता जा रहा हो।

रोली जाने क्यों क्षुब्ध हो उठी थी। उसे लग रहा था, जैसे कई रंग, कई स्थितियाँ, कई भाव एक दूसरे से इस तरह मिलते गये हैं, जिन्हें अलग करके पहचान पाना भी कठिन हो उठा है। वह कुछ पूछना चाहती थी, कुछ अपने मन की बातें कहना चाहती थी, और उसके घर की हवा में एक ऐसी सुगन्ध छोड़ आना चाहती थी, जो उसे चिरकाल तक मादक बनाये रहे। उसके घर, काम करने की मेज़ और पुस्तकों से कुछ ऐसा पाना चाहती थी, जो हमेशा के लिए उसका साथी बना रहे। पर उसे तो कुछ दीख ही नहीं रहा था; न प्यार, न घृणा, न ममता। बाहर बच्चे का रोना, चीख़ने में बदल गया था, और उसकी माँ के, "बस बेटे, हो गया अब

मेरे प्यारे मुन्ना, मेरे लाल....'' आदि, कितने ही टूटे-फूटे वाक्य कमरे के भारीपन में आ कर घुसते और वहीं टूट कर बिखर जाते थे। वह सिगरेट फूंकता जा रहा था और रोली चुप, खामोश बैठी थी।

माँ बच्चे को लिये, कमरे में आयी और रोली की गोद में डालते हुए बोली, ''लो यह कंघी, ज़रा इसके बाल ठीक कर दो। मैं तुम लोगों का खाना ठीक कर लूं।''

''मेरा खाना ?''

''क्यों, क्या हुआ ?''

''नहीं, नहीं जी, मैं खा कर चली हूँ। अब देर होगी मुझे। चलूंगी। आप इन्हें खिलाएँ।'' रोली की आवाज़ में अलगाव का आभास था। वह घूम कर उसे देखने लगा, पर रोली बच्चे के बालों को सुलझाने में लगी रही। हवा का एक झोंका कमरे में अनजाने घुस आया। दीवार से गर्द की एक तह झड़ पड़ी। उसके मेज़ से, छोटे-छोटे अक्षरों में लिखी नन्ही-नन्हीं चिटें उड़ कर फर्श पर फैल गयीं। सामने दीवार पर कलेन्डर में टँगा हुआ बूढ़ा किसान पहले हिला, फिर लड़खड़ा कर गिर पड़ा। बच्चा अभी-अभी उसे देख रहा था। बच्चे की माँ फिर बाहर चली गयी थी।

रोली को अपनी पिछली रात याद आ गयी,....मसीहा की हत्या, प्रार्थना, कुमारी माँ, बच्चा, बच्चों की एक कतार,....उसने बच्चे के माथे को चूम लिया और उसे कंधे से सटा लिया। प्रश्न फिर उसके मन में उभर आये। अभी-अभी वह रास्ते के जिन काँटों को रौंद चुकी थी, पल भर रुकने मात्र से वे फिर उग आये, ''यह बच्चा आपके पास न रहे तो आपको दुख नहीं होगा ?''

बच्चे की माँ पानी ले कर आ गयी थी, ''इन्हें ?'' जैसे उसे प्रश्नकर्ता के प्रति कोई भारी विस्मय हो उठा था, ''संसार में सबके लिए दुख और किसी के लिए भी नहीं। क्या समझीं ?'' वे कुछ हल्के मूड में हँसती हुई बाहर चली गयीं। रोली सोच रही थी,—जब उसने उस दिन चलते-चलते कहा

था, 'ज़रा आँखें बन्द कीजिए !' और उसने उसके बालों को उसकी आँखो पर बिखेर दिया था....सच, अब उसके बिना जीवन कितना असंभव हो उठा है—उसने जल्दी से बच्चे को नीचे उतारा और बगल से अपनी फाइल ले कर कुछ लिखने लगी ।

बच्चा पिता को कुर्सी से जा लगा और पिता की अँगुलियाँ उसके बालों से खेलने लगीं ।

रोली उठी, उसने एक नन्हीं-सी चिट उसके कुर्ते की ऊपरी जेब में डालते हुए कहा, "इसे मेरे जाने पर पढ़िएगा !" और वह बिना कुछ कहे कमरे से बाहर निकल गयी ।

....आज कितने दिन बीत गये हैं !—वह अपनी लिखने की मेज़ से लगा सोच रहा है—खिड़की से आसमान का नीला रंग चाँदनी से ठीक अलग दीखता है, जैसे किसी सफ़ेद संगमरमर पर नीलम का पहाड़ तराश कर रख दिया गया हो, पर उसमें तारों की बेहद कमी है। कहीं एकाध दिखाई पड़ते हैं पर वे गुच्छे तो नहीं, और रोली का नन्हा चिट,....'कल रात मैंने सहसा खिड़की खोली तो लगा मेरी खिड़की के पास नीला आसमान झुक आया है, जिसमें तारों के गुच्छे लटके हैं। मैंने उनमें से एक गुच्छा तोड़ कर रख लिया है। सिर्फ इसलिए कि कहीं तुम माँग न बैठो। इसी आशा में वे अब भी मेरे पास रखे हैं और हमेशा रखे रहेंगे। तुम्हें हँसी आएगी, पर यह एकदम सत्य है। जब भी तुमको इस पर विश्वास हो जाए, मुझे बुलाना, मैं कहीं भी रहूँगी, उसे ले कर बेझिझक आ जाऊँगी और अगर इसी बीच लगा कि यह तो एक भारी झूठ था, कहाँ मैं और कहाँ आसमान के तारों का गुच्छा ! तो मैं स्वयं तुम्हारे पास आऊँगी, लेकिन सिर्फ इन्हीं दो स्थितियों में हमारा मिलन संभव है, अन्यथा हम एक दूसरे से कभी नहीं मिलेंगे, कभी नहीं।'

वह सोचता है सच्चाइयों के बारे में, जीवन के साथ उनकी संगति के

बारे में और उसका मन बार-बार प्रश्न कर उठता है....क्या तुम्हें अब तक सच्चाइयों का बोध नहीं हुआ ? अब तक तुम यह समझ नहीं सकी कि वह तारों का गुच्छा तुम्हारा एक आवेग मात्र था।....ओह, तुम कितनी असम्भव हो मेरे लिए रोली, कितनी विचित्र !

●

आदर्शों का नायक

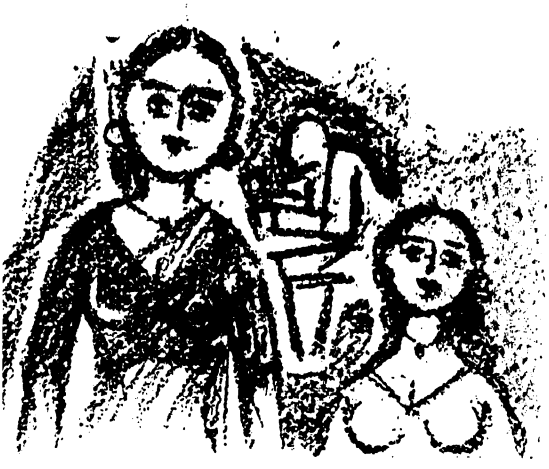

सच बात यह है कि मैं इस लड़के को पसंद नहीं करता। इसकी उठी-उठी-सी चपटी नाक और बेहद तेज़ आँखों में मुझे थोड़ा उचक्कापन नज़र आता है। यह अक्सर बिल्ली की तरह इधर-उधर देखता है और इसकी बातें भी कभी-कभी निरर्थक और उबाऊ हो उठती हैं। लेकिन आज जब इतनी संक्षिप्त-सी बात करने के बाद वह उठ कर मेरे कमरे से बाहर जाने लगा तो मेरे मन में उसके झुके-झुके कंधों और ढीली-ढाली मांस-पेशियों को देख कर गुस्सा हो आया। जी में आया, उसे ललकारूँ और पूछूँ कि उसकी हिम्मत कैसे पड़ी यह बात मुझसे कहने की? शायद उसने मुझे बहुत कमज़ोर और निकम्मा समझ लिया है, तभी तो....

"क्या वह चला गया?" सविता पिछले दरवाज़े से चाय की ट्रे लिये आते हुए बोल पड़ी और मुझे न जाने क्यों हँसी आ गयी। विचार भी दूसरी ओर खिसक गये। शायद उसी के लिए सविता इतने मन से चाय बना कर लायी है। मैं तो बहाना मात्र हूँ।

सविता को मेरी इस हँसी से झेंप आ गयी थी। वह अपनी ओढ़नी सँभालती हुई बोली, "मैंने समझा वह बैठा होगा, इसलिए चाय की दो प्यालियाँ रख लायी थी। कोई बात नहीं, एक लिये जाती हूँ।"

आवाज़ में तनाव था सविता की और मेरे मन में पश्चाताप। अपनी ही बच्ची से इर्ष्या हो आयी थी मुझे। मैंने बात का रुख टटोल कर कहा, "यहीं बैठ कर चाय पी लें, सबी!"

दूसरा दिन होता तो वह बैठ जाती और हँस कर कुछ कहती भी इस बात पर, लेकिन इस समय जाने क्यों बिना कुछ बोले चली

गयी। क्या उसने मेरे मन की बात सुन ली ? या मेरी ईर्ष्या की आँच लग गयी उसे ? मैं कुछ देर सोचता रहा, फिर जाने क्यों मेरा गुस्सा अपने-आप बढ़ने लगा। इसका मतलब तो यह भी होता है कि आज के उसके आने का मंतव्य सविता को मालूम था—ज़रूर इसने ही उसे मुझसे यह कहने के लिए भेजा होगा ! दुष्ट लड़की कहीं की ! बाप की मर्यादा का भी खयाल नहीं तुझे ! इतना ही सोचा होता कि मैं कितना ऊँचा अधिकारी हूँ। मेरी समाज में इज्ज़त है, चार आदमी जानते-मानते हैं। कोई ऐरा-गैरा-नत्थू-खैरा तो नहीं कि जो भी चाहे चला आए और दरवाज़ा खटखटा कर मुझसे मिल जाए ! न पहले से चिट्ठी-पत्री, न पूछना-जाँचना, बस उठाया साइकिल और आ धमके, और यह है नालायक़ कि ड्राइंग रूम खोल कर उसे बैठा लेगी और मुस्कुराती हुई आ कर कहेगी, "कोई मिलने आया है, पापा।" जैसे इस 'कोई' का नाम नहीं मालूम है इसे ! शायद जान-बूझ कर मुझे चिढ़ाती रही है अब तक। जानती है मैं बुद्ध हूँ, जो समझता नहीं। अरे बेटी, मुझी से उड़ती हो ! मैं हवा में उड़ती चिड़िया के पर पहचान लेता हूँ ! मेरा नाम जोगेन्दर सिंह है ! बड़े पापड़ बेले हैं मैंने जीवन में ! राजनीति, साहित्य, पत्रकारिता, सब कर चुका हूँ। तुम समझती होगी कि मैं एक सरकारी अफ़सर हूँ तो बस गधा हूँ। क्या जानूं दुनिया को ! लेकिन तुम्हें बता दूँ कि मैंने तुम्हें पहले ही दिन पहचान लिया था। शायद तुम्हें नहीं मालूम कि सिर्फ तुम्हारी इच्छा जान कर ही मैं उससे मिलने चला जाया करता हूँ। नहीं तो तेरी माँ तो कब से मेरा सिर खा रही है, "क्यों जा कर बैठ जाते हो उससे बात करने ? जो कुछ हो, कह कर टाल दो एक बार। रोज़-रोज़ का यह बैठना, गप्प लड़ाना क्या ? न तुम्हारी उम्र का, न तुम्हारा दोस्त !"

लेकिन यह जानते हुए भी मैं उससे मिलता हूँ कि वह किससे मिलने आता है। न बोलूं तो इसका मतलब यह नहीं होता कि मैं जैसा हूँ, बस वैसा ही बना कर ढकेल दिया गया था दुनिया में और सरकार के दफ़्तर में फाइलों से जूझने लगा।

चाय खत्म हो गयी । मैंने प्याला ट्रे में रख दिया और अख़बार देखने लगा । मेरा मन फिर उलझ गया, जाने कैसा सम्बंध है दोनों का ! इन लड़कियों का कोई भरोसा है ! छिप-छिप कर मिलती न हो उससे ? यह पैदा होने को थी तो मैं कितना चाहता था कि मेरे लड़की ही पैदा हो....अच्छी होती है बच्ची, सही माने में तो वही संतति है । लोग कहते हैं कि कुल पवित्र होता है....कुल पवित्र होता है ? डूब जाता है—डूब ! और माता-पिता से स्नेह ? राम कहो, जहाँ ज़रा-सी जवानी फूटी कि इन्हें माँ-बाप ज़हर ही दिखाई पड़ते हैं । अब देखिए न, अगर मैं इनके प्रेम में बाधक बनूं और रोकूँ तो मेरी लाश पर पाँव रख कर यह अपने प्रेमी के पास जाने को तैयार हो जाएगी....फिर कहाँ मैं और कहाँ वह लफंगा ! सच वह लफंगा ही है—एकदम आवारा....ज़रूर कालेज का चक्कर लगाता होगा और यह ज़रूर सड़क पर उससे बातें करती होगी ! मर्यादा कहाँ होती है इनमें, साहब ! मर्यादा ही होती तो डाइंगरूम में बैठी उसका इंतज़ार करती ! आज तक कभी भी किसी और ने उसके आने की सूचना मुझे दी है ? हमेशा यही तो कूदती पहुँच जाती है ।

इसकी माँ ठीक ही कहती है कि जवान लड़की को इतनी आज़ादी नहीं देते । हर जगह ले कर घूमते नहीं, हर जगह जाने की छूट नहीं देते । लेकिन अब क्या होता है यह-सब सोचने से ? पहले तो उसी ने सिर चढ़ा लिया और मेरे लाख चिल्लाने का भी ध्यान नहीं दिया । मैं भेज रहा था देहरादून कनवेंन्ट में । चली जाती तो क्या हो जाता ? क्या हम लोग मर जाते इसके बिना ? लोग बिना बच्चों के नहीं रह लेते क्या ? लेकिन तब यह नखरा पसारने लगी कि एक तो लड़की, उसे भी भेज दो सधुआइनों के स्कूल में ! पास रहेगी तो घर भरा रहेगा....खाक पास रहेगी ! एक दिन चिड़िया की तरह फुर्र से उड़ जाएगी और हम हाथ मलते रह जाएँगे । यहीं शहर में घूमेगी, सिनेमा देखेगी, हम दोनों बुढ़ापे में सड़ते रहेंगे और एक गिलास पानी भी देने नहीं आएगी ।

सभी लड़कियाँ ऐसी ही होती हैं या यों कहें कि जवानी का रंग ही

ऐसा है, जिसे कोई खास रंग कहना भूल है—कभी कुछ, कभी कुछ....लेकिन सब लड़कियाँ ऐसी थोड़े ही होती हैं ! कुछ ही ऐसी होती हैं । नहीं साहब, कुछ ही ऐसी हैं, जो ऐसी नहीं होतीं, समझे ? कहाँ, ख़्याल है आपका ! गनेश बाबू की लड़की को देखिए । तीस की हो गयी है बेचारी । दहेज के लिए पैसा नहीं जुटता इसलिए शादी नहीं कर सके पर क्या मजाल है जो आँखें ऊपर कर ले ? नहीं पास कर सकी दसवाँ तो इसमें क्या हो गया ? पढ़ कर सविता ने ही कौन-सा तीर मार लिया ? अरे बी० ए० में लड़के-लड़कियों में सबसे ज़्यादा नम्बर पा कर एक सोने का मेडल और कुछ रुपये ही तो पाती है । इतना मैं कह दूँ तो एक ठेकेदार चुपके से दे जाए ।

बड़ी बधाइयाँ मिली थीं मुझे दीक्षांत समारोह के दिन । वह महिमा तो कहने लगी कि ऐसी बेटियों पर स्त्री जाति का भविष्य निर्भर है । हुँ : एक आप पर भविष्य निर्भर है—एक इस पर ! रास्ते चलते आदमी से दिल लगाने की आपकी बीमारी से जैसे मैं परिचित नहीं हूँ । अब बनने चली हैं मुझी से ! ज़रा सूरत तो देखो अपनी शीशे में, कलूटी कहीं की ! बड़ी चली हैं सविता की बड़ाई करने ! कुछ भी हो, सविता-सविता है ! औरत अगर सुन्दर ही नहीं हुई तो औरत क्या ? सविता अगर निरक्षर रहतीं तो भी जीवन में सफल होती । देखी है कोई लड़की सविता-जैसी किसी ने ? कम-से-कम मैंने तो नहीं देखी । कितना गर्व होता है मुझे, जब मैं कभी उसे ले कर दावतों में जाता हूँ ! लोग देखते ही रह जाते हैं मेरी सविता को । और सलीका ! क्या कहना है मेरी सविता का । मेज़ पर बैठेगी तो लगेगा सात पुश्त से काँटे-चम्मच से ही खाया जाता है मेरे घर में । बोल तो ले कोई अंग्रेज़ी मेरी बच्ची के सामने ! मिस जोयल तो कहती थीं कि इसे इंगलैंड भेज दीजिए । लन्दन भेज दूँ ? यही लच्छन हैं लन्दन जाने के ? जब सामने ही आँख में धूल झोंक रही है तो वहाँ जा कर तो तर्पण ही कर देगी माँ-बाप के नाम का ! अब तो मैं उसे कालेज भी छुड़ा दूँ तो अच्छा रहेगा । उसकी माँ ठीक ही कहती है कि ज़्यादा उमर होने से ब्याह-शादी का कोई मतलब नहीं रह जाता । मियाँ कुछ और सोचता है, बीवी कुछ

और। कहाँ की एम० ए० पास है इसकी माँ ! लेकिन न घर-गृहस्थी में कभी खोट आयी, न कभी मन का भाव ही बदला। उसने जो कोई बात भी सोची हो कभी। इसने भी कभी ड्राइंग रूम में पढ़ा होता और शहर में घूमी होती तो भला मन लगता मेरे साथ !

"चिट्ठियाँ नहीं लिखानी हैं, पापा ? मिस जोरा कब से स्टडी में बैठी इंतज़ार कर रही हैं।" सविता फिर पर्दे को हटा' कर खड़ी थी।

इस बार मैं उसे देखने लगा। उसके वाक्य की बनावट बदली हुई थी। मेरे घर में ऐसे वाक्यांशों के प्रयोग पर एतराज़ है। वैसे इस बात को वह कई लोगों के बीच भी आदेश के स्वर में ही कहती। इस बात में उसका और मेरा दोनों का निश्चय डावाँडोल लगता था और ऐसे ढुलमुल निश्चय से मैं चिढ़ता हूँ, यह वह जानती है। फिर उसने शायद मुझे आज बदला हुआ समझ कर ही ऐसा कहा है। शायद उसे मैं आज ढुलमुलयकीन लग रहा हूँ। क्यों, बेटी, यही न ? मैं उसकी ओर ऐसे देखने लगा जैसे मैं इस अनबोले प्रश्न का उत्तर चाहता हूँ। लेकिन वह बिना उत्तर दिये चली गयी। मुझे लगा जैसे सचमुच वह मुझे मुँह चिढ़ा कर यह कहती गयी है कि, 'कम-से-कम मैं तुम्हें ऐसा नहीं समझती थी ! यह सच है कि रूढ़ियाँ आदमी को मूर्ख बना देती हैं, लेकिन तुम भी उनके सामने घुटने टेक दोगे, यह नहीं जानती थी, पापा !' पागल कहीं की ! मैं और घुटने टेक दूँ, जमाने के सामने ! मर्यादा की झूठी महिमा के सामने ? यह मुझसे नहीं होगा सबी की माँ, कान खोल कर सुन लो ! मैं बच्चों के व्यक्तिगत जीवन में अड़ंगा लगाने का क़ायल नहीं हूँ। तुम शायद भूल गयी हो कि मैं सबी के बचपन ही में कहा करता था कि वह अपने से अपना वर चुनेगी। अब वह बच्ची तो नहीं है। इस साल युनिवर्सिटी से एम. ए. कर लेगी। वह अपना भला-बुरा खुद सोच सकती है। हम लोग उसके सहायक हैं, उसके रास्ते मे बाधक नहीं। वह लड़का चाहे जैसा भी हो, तुमसे क्या ? सबी को तो भाता है। कितनी खुश होती है सबी उसे देख कर ! फूल का रंग ही बता देता है कि बसंत आ गया है। मैं क्यों उसकी खुशी में बाधक बनूं ? ठीक है, सबी

रानी, जैसा तुम चाहोगी, वैसा ही होगा। जानती हो, मैंने उससे क्या कहा है ? नहीं, तुम नहीं जानती ! इतना ही तो कि, भाई अभी तुरंत इसका उत्तर कैसे दे दूँ ? एकाध दिन सोचने का मौका मुझे भी दो। तुमने तो बहुत सोचा होगा, शायद सबी ने भी सोचा हो पर मैं तो आज अभी सुन रहा हूँ। वह, 'ठीक है !' कह कर खुश-खुश गया है, सबी ! दूसरा पिता होता तो मार बैठता। सच, मैंने बड़ी खुशी से, शांति से उसकी बातें सुनी है। प्रभावित भी हुआ हूँ उसके चरित्र और साहस से। बेचारा कुछ बाल भी तो नहीं सका, सिवा इसके कि 'सबी से मेरी शादी कर दीजिए।' उसका चेहरा सिंदूरी हो आया था, सबी, और मैं सोचता रह गया, बल्कि यह समझो कि देखता ही रह गया उसे बड़ी देर तक। लेकिन जब मै कुछ नही बोला तो उसने कहा, 'मैं कोई जवाब चाहता हूँ आप से !' मैंने ठीक वही सब कहा जो अभी बता चुका हूँ। झूठ क्यों बोलूँगा सबी ? मेरा विश्वास करो ! तुम्हें तो सब मालूम ही हो जाएगा। खामखाह अपना मन खराब क्यों करती हो ? वह अभी तुमसे बताएगा। जहाँ तुम चली घर से कि वह रास्ते में मिला। हो सकता है तुम्हारी कोई सहेली उसका पत्र ही ले आए या कोई दाई या चपरासी पहले से नियुक्त हो इस काम के लिए ! कोई पुर्जा तुम्हारे ब्लाउज़ में चुपके से आ जाएगा शाम तक, और कालेज से लौटते ही तुम बाथरूम में आध घंटे के लिए घुस जाओगी। पर ऐसा नहीं कि ख़बर तुझे मिल न जाए ! देखना वह तारीफ़ ही करेगा, मेरी।

मैं जानता था कि तुमने उससे क्या-क्या कह रखा होगा....मेरे पापा दक़ियानूस नहीं हैं। वे निहायत खुले हुए आदमी हैं। और फिर मेरे मामले में ? मेरी तो अँगुलियों के इशारे पर नाचते हैं। जो कह दूँ, बस वही सच है। उन्होंने जीवन-भर वही कहने की शिक्षा दी है, जो मन द्वारा परीक्षित और स्वीकृत हो। वे उन झूठे और बेईमान अफ़सरों में नहीं हैं, जो दूसरों का तलुआ सहला कर कुर्सियों पर बैठते हैं और फिर चापलूसों को दरबारी बना कर हुकूमत करते हैं। देखो, मैं इतनी बड़ी हो गयी पर आज तक एक भी ऐसे आदमी को नहीं जानती जो उनके यहाँ खुशामद करने आया हो

और उसे डाँट न पड़ गयी हो। इसीलिए मेरा घर स्वर्ग के समान पवित्र है। नहीं तो मेरे पड़ोसी अफ़सरों को देखो तो पल-भर को घर में शान्ति नहीं।

देखा तुमने, मैं कितना सच-सच बता गया! सबी ने फिर दरवाज़े पर आ कर मेरी बात मन से छीन ली, "यह क्या है पापा, आखिर क्यों नहीं उठते इस कमरे से? दफ्तर भी नहीं जाना है क्या?"

"जाना है, बेटी! चलो, उसी तरफ़ से तुम्हें कालेज भी छोड़ता जाऊँगा। देखो, नहाने का सब ठीक है न?" मैं उठ खड़ा हुआ तो सबी हँसती हुई अन्दर चली गयी....लेकिन यह तो खुश हो गयी सबी! अगर उसे उम्मीद होती उसके मिलने की और हमारी बातें जानने की तो उसे संकोच होता मेरे साथ जाने में। हो सकता है, मैं ग़लत ही इतना सोच रहा हूँ। कहीं ऐसा तो नहीं कि सबी को इस सब का पता ही नहीं है और मैं ख्यालो घोड़े दौड़ाता जा रहा हूँ। ज़रूर पता नहीं हैं उसे!—मैं नहाता रहा और सोचता रहा।—भला मेरी लड़की और उसे इतना स्वाभिमान न हो। दिल भी दे तो ऐसे उठाईगीर को जिसकी न जात का पता, न गोत का! आखिर एक स्तर भी तो होता है आदमी का। इतनी टेस्ट की लड़की और इस भठियारे से प्रेम करने लगेगी? ज़रूर कोई दूसरी बात है। लगता है हज़रत बैठे-बिठाए गोटी लाल करना चाहते हैं। अरे बच्चू, खपा दी ज़िन्दगी इसी में, तब हो पाया हूँ इतना बड़ा अफ़सर! सोचा होगा ऐसे ही शादी की बात कर दूँ! बिगड़ता थोड़े ही है कुछ। मान गये तो वाह-वाह और मार बैठे तो सबी के मन में एक कमज़ोरी पैदा हो जाएगी और वह पसीज कर दिल दे बैठेगी। फिर इधर-उधर करके कुछ हिसाब बैठ गया तो बाबू जोगेन्दर सिंह के दामाद बन बैठेंगे! कोई लड़का तो है नहीं, लाखों रुपये, मोटर, सब एक साथ और ऊपर से सबी। जिन्दगी को सिनेमा समझ लिया है कमबख्त ने!

मैं नहा कर खुश-खुश निकला तो सबी तैयार थी, गुड़िया की तरह बनी-ठनी। हथकरघे के राजस्थानी कपड़ों में जाने क्यों वह मुझे बहुत भली दिखती है। मैं झटपट कपड़े पहन कर तैयार हो गया। गाड़ी

दरवाज़े पर लगी थी। शोफ़र दरवाज़ा खोल कर पिछली सीट पर जा बैठा और सबी गाड़ी स्टार्ट करके ले चली।

मुझे बराबर लग रहा था कि कहीं वह रास्ते में खड़ा न हो और हमारी मोटर देख कर हाथ न हिला दे। अगर सबी ने गाड़ी रोक दी तो इसका मतलब क्या होगा? यही न कि वह रोज़ उससे मिलता है! नहीं-नहीं जनाब, वह आज पहली ही बार मिल रहा है!....सिर्फ इस आशा में कि देखें सबी का क्या रुख़ है उसकी ओर?

वह तो यही सोचता होगा कि मैंने सबी से ज़रूर बता दिया होगा। समझता है मैं एक दुधमुंहा बच्चा हूँ। अगर ऐसा ही कमज़ोर-दिल होता तो तुम मेरे दफ़्तर में नियुक्त न हो गये होते अब तक। ...कब से तो रो रहे हो कि बड़ी तकलीफ़ है, मुझे कोई काम दिला दीजिए। और देखा, मैंने किस-किस तरह संतोष दे कर बझाये रखा? दूसरा होता तो काम दे कर हाथ कटा चुका होता या कुछ ऐसा भड़क जाता कि तुम गालियाँ देते घूमते। बच्चू, मैं ऐसा साँप हूँ जो काटने पर लहर भी नहीं देता।

मैंने कई बार सबी की ओर देखा। वह ख़ुश-ख़ुश गाड़ी चलाती जा रही थी। मन में कहीं कोई खरोंच नहीं, कोई गुत्थी नहीं, इसलिए इस डर से कि कहीं मेरी ही निगाह में वह पड़ न जाए, फिर मैं!....नहीं जी, मैं गाड़ी रोकने से रहा। मैं लगातार नीचे देखता रहा।

कालेज पहुँच कर सबी मोटर से नीचे उतर गयी तो मुझे जाने क्यों बड़ा हलकापन महसूस हुआ। मन बेहद प्रसन्न हो आया।

जैसे सिसियाते हुए जाड़े में सुनहली धूप छिटक जाए, उसी तरह मेरे लिए खुशी की किरणें चारों ओर फैल गयी थीं। सबी इस मसले के बारे में कुछ भी नहीं जानती—बात इतनी-सी ही थी पर इसका असर मेरे मन पर जाने कैसा हुआ था। जाने क्यों, मुझे लग रहा था कि मैं ठोस ज़मीन पर उतर आया हूँ। मैं फिर उसी तरह उस लड़के से बातें कर सकता हूँ, क्योंकि सविता ज़रूर इस बात को सुनते ही कह देगी कि मैं उस गधे से शादी करूँगी? दिमाग़ तो ठीक हैं न, पापा! मैं....ही....ही....करके दाँत

निकाल कर हसूंगा और उसके आने पर फिर सहज गम्भीर मुद्रा में उससे मिलने के लिए ड्राइङ्ग-रूम में आ बैठूंगा। क्या मज़ाल है जो वह भाँप पाये कि मेरे मन में क्या है ! वह तो वही मानेगा जो मैं कहूँगा। आज तक कोई भी मुझे ऐसा नहीं मिला जो वह सब मान न जाए जो मैं कहूँ।

अगर आप बुरा न मानें तो मैं एक बात बताऊँ ! असल में आदमी कमज़ोर होता है संवेदनों के आगे। कुछ दुनियावी फार्मूले हैं जो धीरे-धीरे हमारी नसों में बस गये हैं कि कोई ग़रीब हो तो उससे सहानुभूति रखनी ही चाहिए, लेकिन मैंने एक नया शोशा खोजा है, भाई जान ! बस ज़रा-सा बदल दिया है बात को। सहानुभूति दिखानी चाहिए, बातों से और हाव-भाव से। आप को प्रिय-दर्शन होना चाहिए पहले, सफलता के लिए प्रिय-कर्म होना क़तई ज़रूरी नहीं। अगर दिल पर हर बात का असर पड़ गया तो बेचारा दिल क्या रहेगा इस जमाने में, चू-चू का मुरब्बा बन जाएगा। समझिए साहब कि कोई मज़बूत से मज़बूत चीज़ हो और उस पर लगातार धक्के लगें तो भला वह कब तक साबुत बची रहेगी ? लेकिन लोग समझते नहीं और इसलिए रोज़ हार्ट की बीमारियाँ बढ़ती जा रही हैं। मुझसे कोई कहे तो इन बीमारियों को हमेशा के लिए दूर करने का एक ऐसा नुस्ख़ा निकाल दूँ कि आदमी कभी हृदय के रोग से बीमार ही न हो। यह कोई सतयुग नहीं है कि आप परम्परागत मूल्यों से अपने को चिपकाये रखें। आदमी ने कितना विकास किया है और उसकी समस्याएँ आज कितनी बढ़ी हुई हैं। फुर्सत कहाँ है मुझे आपके बारे में सोचने के लिए। यह तो गनीमत समझिए कि मैं आपकी बात सुन लेता हूँ। लेकिन अगर यह भी चाहें कि उसका असर भी झेलूँ तो वह नहीं होने का।

मैं मोटर तेज़ी से ड्राइव करते हुए दफ़्तर पहुँचा। कमरे के सामने के दोनों चपरासी उठ खड़े हुए और एक ने चिक उठा दी। अन्दर घुसते ही मेरी कल्पना में एक नाटक आ गया। कारण उसका छोटा-सा था। सिर्फ इतना ही कि जब मैं मोटर से उतर कर जीने पर चढ़ रहा था तो मुझे एकाएक ख्याल आया कि अभी जाड़े की छुट्टियों में एक बार घर पर

अपनी डाक देखते हुए मैंने सविता के नाम की एक चिट्ठी उसके हाथ में दी थी और उसी के थोड़ी देर बाद उसने उस लड़के की नौकरी के लिए मुझसे कहा था। ज़रूर उसकी ही चिट्ठी रही होगी। लेकिन होता क्या है इससे, आप चिट्ठी नहीं रामायण लिख कर भी मेरी सबी को बिना मेरी मर्ज़ी के.... हो सकता है, कालेज से लौट कर सविता ही मुझसे बात उठाए या कोई चिट्ठी ही लिख कर दे कि वह उससे शादी करना चाहती है। दोनों एक दूसरे को इतने दिनों से जानते हैं। कभी-कभी साथ घूमने भी तो गये हैं। एक बार सविता ने ही मुझसे मोटर के लिए कहा था और दोनों पिकनिक पर गये थे। लगता है चूक हुई, मुझसे। ऐसा नहीं कि मैंने इस खतरे की ओर ध्यान नहीं दिया था। सच पूछिए तो सविता की उम्र की जितनी जानकारी मुझे है, शयाद ही किसी की हो। मगर इस लड़के को तो मैं मरियल, बदसूरत और हीन समझता था। शायद इसीलिए सोचता था कि निरापद है सविता का इसका साथ। छिपा रुस्तम निकला यह तो कमबख्त! लेकिन जनाब, यह गाँठ बाँध लीजिए कि अगर सविता ने मुझसे शादी का प्रस्ताव कर दिया तो आपकी ख़ैर नहीं।

पर्दा अपने से खिंच गया मेरी कल्पना के नाटक का।....बाबू जोगेन्दर सिंह का दफ़्तर। अभी साहब दफ़्तर में नहीं पहुँचा है, तभी एक युवक आ कर कमरे में घुस जाता है और उसकी मेज़ के सामने चुपचाप बैठा रहता है।

एक अजीब-सी झल्लाहट सेरे मन में भर जाती है। आखिर इसे अन्दर घुसने किसने दिया! अहमक हैं मेरे चपरासी। इतने दिन साथ रहने पर भी अफसर को ठीक नहीं समझते।

मैं रिटाइरिंग की तरफ़ हैंगर में अपना कोट टाँगने के लिए बढ़ा। मुझे ख़्याल आया कि शायद फिर वह अपनी बात का उत्तर चाहे। इतना समय शायद उसने काफ़ी समझा हो इस मसले के लिए। लेकिन देखिए तो साहस, कमाल है! आपने झट समझ लिया कि सविता इस जैसे गधे से शादी कर लेगो और मैं हाँ कह दूँगा। जनाब, मैं लड़की से रोटी नहीं

सिकवाता। उसे प्रेम और शादी करने की पूरी छूट है। मैं व्यक्तिगत जीवन में टाँग अड़ाने वाला खूसट बाप नहीं बनना चाहता। कान खोल कर सुन लीजिए, सबी की मर्ज़ी ही सब कुछ है। भाग्य आज़माना हो तो उसी के आगे माथा टेकिए जा कर। अगर वह 'हाँ' कर देगी तो मैं क्यों बोलने जाऊँगा। लेकिन इस बात-चीत को अगर मैं बोल कर कहूँ और कोई सुन ले तो !....बड़ा गधा है यह लड़का !

ऐसी हालत में मैं चपरासी को आवाज़ दे कर उसे ताक़ीद करूँगा, "कोई अन्दर न आने पाए। तुम लोग भी बिना बुलाये अन्दर न आना। कुछ ज़रूरी काग़ज़ात तैयार करना है !" और हैंगर की तरफ़ बढ़ जाऊँगा। कोट उतार कर टाँग दूँगा। फिर कुर्सी पर बैठने को लौटूँगा। साइड-रैक पर ट्रे में एक छुरी पड़ी होगी। मैं उसे उठाऊँगा और ज़ोर लगा कर खोल लूंगा तो उसकी धार चमक उठेगी। पल भर उसे देखता रहूँगा, फिर उसे धीरे से मेज़ पर रख दूँगा। मोहागनी की चम-चमाती काली टेबिल पर एक लपलपाता हुआ तेज़ छुरा ! मूठ उसके सामने, और फल की नोक मेरी ओर। वह अँगूठा ठुड्डियों पर दिये, माथा ज़रा ऊँचा किये एकटक मेरी और देखता रहेगा।

"भई, मैने तुम्हारी बात पर हर पहलू से विचार कर लिया," मैं खड़े-खड़े अलग-बगल देखते हुए मशीन की तरह बोलूंगा। माथे पर कुछ ऐसे भाव, बात मे कुछ ऐसी लापरवाही कि जैसे मैने मेज़ पर पड़ी उस नाचीज़ को देखा ही न हो, "तुम पहले दर्जे में एम० ए० पास हो। मैं चाहता तो कब का तुम्हें इस दफ़्तर में लगा चुका होता। दो साल से मैं तुम्हें रोज़ इस बात का भरोसा देता रहा, लेकिन जब-जब मौक़ा आया कोई-न-कोई ऐसा आ गया, जिसे टालना मेरे लिए मुश्किल हो गया। कभी ऊपर के अधिकारी का दामाद आया तो कभी मेरे अपने ही रिश्तेदार। तुम सचमुच ऊब गये होगे मेरे यहाँ दौड़ते-दौड़ते, लेकिन देखा तुमने भाग्य का चक्कर ! मैंने जब फ़िलासफ़ी में सविता की सहायता के लिए तुमसे कहा था तभी मुझे लगा था कि सविता मेरे प्रस्ताव से बड़ी खुश है। वह तुम्हारी

हमेशा तारीफ़ करती थी। ईश्वर आदमी को हमेशा ठीक दिशा ही में ले जाता है। आज जब मैंने उससे पूछा तो लाज के मारे लाल पड़ गयी। उसकी माँ तो कहने लगी कि तुम ईश्वर के भेजे उसे मिल गये। वह ऐसा ही लड़का चाहती थी जो उसका बन कर रह सके। जानते ही हो कि हमारे कोई बच्चा नहीं है। चलो, अच्छा ही हुआ जो तुम्हें कहीं लगाया नहीं। अब तो वे सभी लोग काम आएँगे, जिनके लड़कों को मैंने लगा रखा है। कोई बड़ी सर्विस—जानते हो नौकरी बग़ैरह मे अगर एक बार छोटा काम कर लो तों बस वहीं के वहीं गड़े रहोगे !"

मेरी निगाह फिर उस छुरे की चमकती धार पर पड़ जाएगी, "हाँ, तुम तो कह रहे थे कि तुम्हारी ट्यूशनें भी छूट गयी हैं और इधर तीन-चार दिन से तुमने कुछ खाना भी नहीं खाया। बड़े अजीब आदमी हो ! ऐसी क्या बात थी जो सुबह उठ कर चलते बने। देखो भई, यह संकोच ठीक नहीं। तुम मेरे घर को अपना घर नहीं समझते, यही न ?

"मैं सोच ही रहा था कि तुम्हें कैसे मिलूं। देखो सबी ने ये...." मैं सौ-सौ के दो नोट निकाल कर मेज़ पर रख दूँगा, "आते-आते तुम्हारे पास तुरंत भेजने को कहा था, उसने। मैं तो उसकी बात टाल ही नहीं सकता, यह तुमने देखा ही होगा।" मेरी आँख फिर उसकी ओर जाएगी। वह वैसे ही देख रहा होगा। "हाँ, वे तुम्हारी माता जी कैसी हैं ? बीमार थीं तो कुछ दवा-दारू का इंतजाम किया या नहीं ? अब उन्हें शाम घर ही पर लाओ। उन्हें रहने ही दो मेरे साथ। सबी सँभाल लेगी।" छुरा धीरे-धीरे उसके आगे पहुँच जाएगा और सौ-सौ के दोनों नोट उसकी मूठ के नीचे दब जाएँगे। "बस इसी हफ़्ते में कुछ हो जाए। अब टालना नहीं है। देखो, कहीं इधर-उधर खिसक न जाना इस बीच। अरे हाँ,....मेरा ख्याल तो देखो ! तुम्हें चाय-वाय के लिए तो....ज़रा बाथ हो लूं मैं !" मैं मुड़ कर चल पड़ूंगा। बहुत सँभालने पर भी दो ही कदमों में कमरे के अन्दर हो रहूँगा। दरवाजा बन्द करके सिटकनी लगा दूँगा और पल भर उसी के सहारे खड़ा ज़ोर-ज़ोर की साँस लेता रहूँगा। फिर बगल की छोटी

टेबिल से फोन उठा कर पुलिस को मिलाऊँगा,"मैं जोगेन्दर सिंह बोल रहा हूँ।....हाँ, हाँ, चीफ़-चीफ़....एक उचक्का मेरे कमरे में घुस आया है। छुरा दिखा कर मेरे पर्स से दो-सौ रुपये ले चुका है और तीन-सौ और माँगता है। मेरे चीख़ते ही वह चाकू चला देगा, इसलिए मैं चुप बैठा हूँ और वह जवाब चाहता है। जल्दी करें, नहीं तो जान का खतरा है।"

....नाटक खत्म हो गया था, क्योंकि मैं अपने आफिस की मेज़ पर बैठा था और राहत की साँस ले कर अपने से ही कह रहा था, आप से यही उम्मीद थी जोगेन्दर सिंह जी ! साँप भी मर गया और लाठी भी नहीं टूटी—क्यों ?....

मुझे सामने पड़ी फाइलों से ऊब हो रही थी और न जाने क्यों सारे शरीर में थकान भर उठी थी। मैं उठ कर पिछले कमरे में चला गया और आराम कुर्सी में धँस गया। चपरासी से बता दिया था कि मेरी तबीयत ठीक नहीं है। किसी को अन्दर न आने दे। वहीं बैठे-बैठे मैंने फ़ैसला किया कि सविता समझदार लड़की है। उसे ठीक से समझा दूँगा। अपनी ही जिन्दगी की सारी घटनाएँ....आखिर मैं थक ही गया न ! कभी सोचता था इस कड़े मन की ज़मीन में माया की स्मृति का पौदा उगने ही नहीं दूँगा पर आज मौक़ा पाते ही उसके अंकुर अपने आप उग आये थे....तुम्हें यह जान कर अचम्भा होगा, सबी, कि मेरे इतने सारे सोच-विचार के पीछे माया ही बैठी हुई है। लेकिन वह सब कैसे कहूँगा, तुमसे ? माया के आत्मविभोर समर्पण की बात तुम्हें कैसे बताऊँगा ? ज़रूरत भी क्या है उस-सब की ! बात की ऊपरी सतह को ऐसा रंग भी तो दिया जा सकता है जिसमें मेरा चरित्र धवल रंगों में दिखे। सच्चाइयों के चेहरे को किसी भी रंग के प्रभाव में ले आना क्या मुश्किल है। ख़तरनाक गहराइयों में, जहाँ से वे ख़ुद बोलने लगती हैं, मैं उतरूँगा ही नहीं।

हाँ, याद आ गया। मैं उस अफसर के पास इसलिए गया था कि वह मेरी लिखी हुई चीज़े छापने के लिए अपने विभाग के सम्पादकों से कह दे। वह जानता था कि मैं कुछ लिखता हूँ और माया भी मेरी रचनाएँ पढ़ चुकी

थी। पहले ही दिन वह कमरे में दिखी। छोटी-सी थी वह—तुमसे बहुत छोटी, सबी ! उमर मुश्किल से रही होगी सत्तर-अठारह। उसके चेहरे पर विचित्र-सी खुशी दिखी मुझे। लेकिन मैं उसके चेहरे से ज़्यादा देख रहा था उसके सेब-जैसे गालों को। हिरन की तरह नाचती हुई उसकी आँखों में मुझे वासना ही अधिक दिख रही थी। भला मैं यह कैसे बताऊँगा सबी से कि मेरे मन में उन आँखों को होठों से क़ैद कर लेने या उन गालों के नन्हें गढ़ों पर इस तरह चूम लेने की प्रबल इच्छा हो उठी थी जिससे उन पर खून उभर आए।

वह भागती हुई चली गयी अन्दर और अपने बाप से मेरे बारे में साँस रोक कर कुछ कहने लगी थी। मैं पहले तो सुनता रहा, फिर उसकी अभ्यास की कापी जिसे वह पढ़ते-पढ़ते छोड़ कर गयी थी; उलट-पुलट कर देखने लगा। आखिरी कवर के नीचे कितनी ही तस्वीरें बनी थीं। टेढ़ी-मेढ़ी रेखाएँ, सिनेमा के गीतों की लाइनें, कुछ टूटे-बिखरे शब्द....'मेरे, भोले राजा, आजा....हो....आजा, और नीचे एकदम किनारे पर तीन लड़कियों की तस्वीरें जिनमें सीने की बनावट पर बार-बार पेन्सिलें फेरी गयी थीं। उन्हें बड़ा, छोटा, नुकीला और ढीला बनाया गया था। एक पर निशान बना कर लिखा था, 'सकोरा' एक की बगल में लिखा था, 'फुटबाल' और....

मैं मज़े में यह सब देखता रहा था। तभी पैरों की आहट सुनाई दी और मैंने कापी बंद करते-करते दरवाज़े की ओर देखा—माया थी। शरारत की एक अजीब-सी कौंध मेरे मन में हुई। मैंने कापी बंद करते-करते उस पेज पर एक बार इसलिए निगाह डाली, जिससे वह जान ले कि मैंने सब देख लिया है।

माया ठगी-सी रह गयी। चेहरे पर सुर्खी उभर-उभर कर मिटी और फिर उभरी। लेकिन मैं उसके फ्राक की गोलाइयों पर निगाह लगाये रहा। जैसे यह जानना चाहता हूँ कि ये सकोरे की तरह के हैं या फुटबाल.... लेकिन वह झपट कर कापियाँ समेटते हुए यह कह कर अन्दर चली गयी कि, "पापा अभी आ रहे हैं।"

सोचिए, इस प्रसंग को मैं कैसे कह सकता हूँ अपनी बेटी से ? फिर सोचता हूँ इस-सब की ज़रूरत भी क्या है ? मैं अपने काम से उसके यहाँ गया था और इसी के लिए जाता भी रहा। माया से आते-जाते ही स्नेह हो गया। साथ ही यह भी कहूँगा कि सब कुछ उसी की ओर से था। मैं तो वह सब करता गया जो उसने कहा।

लेकिन बात उल्टी ही थी। मैं उस दिन जब आने लगा तो उस अफसर से कह कर आया था कि परसों आठ बजे फिर आऊँगा। मैं जानता था कि माया इसे सुन रही है। देखूँ, उस दिन क्या गुल खिलते हैं।

किसी तरह बीच का दिन कटा। तीसरे दिन सुबह ही तैयार हो कर मैं माया के घर पहुँचा। दरवाज़ा खटकाते ही वह बाहर निकल आयी। चुस्त सलवार के ऊपर अंगों से सटा हुआ गहरे लाल रंग का कुर्ता। दूर तक पीठ और सीने का हिस्सा खुला हुआ। कंधे के इधर-उधर लटकती हुई ओढ़नी जिनसे सीने के ढँकाव का कोई मतलब नहीं। मैं पल भर फिर वहीं देखता रहा। शायद आज मुस्कान उठ आये चेहरे पर। लेकिन फिर माया उसी तरह सिंदूरी चेहरा लिये अन्दर चली गयी और मै फिर कापी उलट कर देखने लगा। आखिरी पेज़ पर लिखा था—इस तरह देखने से क्या....आ.... जा....

मैने झट कलम निकाल कर नीचे लिख दिया—कहाँ ?

लेकिन तभी बगल के कमरे से आवाज सुनाई पड़ी—क्या दौड़ी आ जाती है यहाँ ? कह नहीं सकती कि पापा की तबीयत खराब है ?—माया चुप थी। कोई पुरुष स्वर बोला—बाबा अब से जा कर कह दो !

मै इतना तो तुमसे कह ही सकता हूँ सविता कि मै ऐसा कभी नहीं कर सकता था। मैं बीमार भी होता तो इस तरह तुम्हारी बात नहीं टालता। देखो, कितनी ही बार उसे अन्दर के कमरे मे बुला कर बैठा लेता हूँ। लेकिन जानती हो, उस समय मैंने क्या किया ? चुपचाप वहाँ से चला आया। मुझे डर था कि माया मेरे सामने आते-आते रो पड़ेगी।

कई दिनों के बाद मैं फिर उधर गया। माया को इस तरह भूल जाना

मेरे लिए अब सम्भव नहीं था। वह क्या सोचेगी मेरे बारे में ? लेकिन फिर कभी माया उस कमरे में नहीं मिली। मैं उसके बाप से मिलता, बातें करता और दिल भारी लिये लौट आता। कई महीने बीत गये इस तरह। एक दिन मैंने दरवाज़ा खटखटाया तो हलकी-सी आवाज़ सुनायी पड़ी—वही है। ऐसा पीछे पड़ गया है कि जान छुड़ानी मुश्किल है।—माया के बाप ने कहा था। फिर उसकी माँ बोली—इस गधे से पिंड छुड़ाओ किसी तरह। —तभी झटके से दरवाज़ा खुला। और तमतमाया चेहरा लिये माया परदे के बाहर आ गयी। उसकी आँखें भरी हुई थीं, "आखिर क्यों आते हैं ऐसे लोगों के यहाँ आप ?" उसने ऐसे कहा जिसे सिर्फ मैं ही सुन सकता था। फिर उसका हाथ आगे बढ़ा। उसमें एक नन्हीं-सी चिट थी। मैंने जैसे मुँह माँगा वरदान पा लिया था। पैर दबा कर वहाँ से खिसका तो बहुत दूर आ कर साँस ली। फिर पुर्जा खोल कर पढ़ने लगा—

—मैं जानतो हूँ आप क्यों आते हैं। लेकिन यह घर मेरा तो नहीं है। इसलिए इतनी अपमानजनक बातें सुन कर भी कलेजे पर पत्थर रखे पड़ी रहती हूँ। आपके प्रश्न का उत्तर नहीं दे पायी। चाहती तो दे देती, लेकिन मेरा मन बहुत दुखी था इसलिए उसे और भी दुख में रखना चाहती थी याद है आपको अपना प्रश्न ? उत्तर है—परसों, ठीक आठ बजे रात, 'महिला मंगल' के सामने। मेरे स्कूल में कन्सर्ट है। उसे बीच में छोड़ कर मैं अकेली रिक्शा में आऊँगी। आप वहीं खड़े रहिएगा। रिक्शा रुकते ही चुपचाप उसमें आ बैठिएगा। कन्सर्ट दस बजे तक चलेगा, ग्यारह तक भी जा सकता है। मैं अपना गीत खतम करके आऊँगी और फिर दस के पहले ही कालेज में घुस जाऊँगी। वहाँ मेरी मोटर आएगी मुझे लेने।

—परसों, रात के आठ बजे !—मेरे शरीर से पसीना छूटने लगा।

मुझे तब नहीं मालूम था, सबी, कि मैं यह सब क्या कर रहा हूँ। मेरे ध्यान में तो कुछ और ही था। नहीं कह सकता तुमसे ये सारी बातें— कभी नहीं ! बेकार ही मैं सोच रहा हूँ यह सब। लेकिन इतना तुम जान

सकती हो कि माया मुझसे मिलती रही थी। उसे अपने इस पहले प्यार के बदले सिर्फ प्रतारणा, दुख और आँसू ही मिले। मेरे मन में तो माया के शरीर की चाह थी। ऊपर से जब उस अधिकारी ने मेरा इतना अपमान किया तो एक जलती हुई ईर्ष्या और प्रतिशोध की भावना ने शरीर की भूख को मेरे लिए पशु से भी बदतर बना दिया था।....

मैं उठ कर अपने छोटे कमरे में टहलने लगा। एक बार आफिस में आया तो देखा, चपरासी किसी से कह रहा था,"साहब की तबीयत खराब है। आज कोई उनसे नहीं मिल सकता।"....मैं फिर उसी कमरे में लौट गया। कुर्सी पर बैठते-बैठते माया का रिक्शे में बैठा रूप मेरी आँखों में उभर आया। कन्सर्ट का पूरा मेकअप लिये बैठी थी वह। एक बार जी में आया उसे इस अँधेरे में हल्के से चूम कर सीने से लगा लूं और कहूँ कि, माया तू कालेज चली जा! इस तरह बाहर आना ठीक नहीं, पर माया मुझसे सटी आ रही थी। जैसे इस लम्बे व्यवधान ने उसे सब कुछ के लिए तैयार कर दिया था। मैंने उसकी पीठ के पीछे से बाँह डाल कर उसके एक सीने को हाथ में लिये उसे बगल में सटा लिया। रिक्शा बढ़ता गया। कालेज के आगे की ढलवान के ऊपर चढ़ कर एक बड़ा-सा सूना मैदान था। मैंने रिक्शे वाले को दो रुपये निकाल कर दिये, "यहीं रुक कर रिक्शा ठीक करने का बहाना करते रहो, अभी आया। दो रुपये और दूँगा।" और हम दोनों उसी अन्धकार में खो गये। आधे घंटे बाद किसी तरह माया को सँभाल कर मैं रिक्शे तक ले आया। रास्ते भर बार-बार उसे चूमता और सहलाता रहा। कालेज के पास पहुँच कर फिर मेरी प्रतिहिंसा जगी। मैंने उसे सीने में भींच कर एक बार फिर कस कर चूम लिया। वह उतरने लगी तो मैंने धीरे से कहा, "फिर?"

"परसों कॉलेज के बाद, उसी जगह।" और वह धीरे-धीरे कालेज में चली गयी।

मैंने माया को प्रतिहिंसा में बरबाद कर दिया....ओह, माया,....मायाऽ ....मायाऽऽ....

मेरा चपरासी दौड़ा हुआ आ गया, "जी साहब !"

मैं चौंक कर जग गया और उसे एक गिलास पानी के लिए कह कर कमरे में टहलते-टहलते आफ़िस की मेज़ पर आ बैठा। अब मुझे बुरा लग रहा था कि यह मैं क्या सोच रहा हूँ, लेकिन माया थी कि हटती ही नहीं सच्चाइयों की निचली सतह से और मैं फिर सब-कुछ दबाने की कोशिश करने लगता हूँ। क्या ज़रूरत है इन सब परेशानियों की ? अरे मैं कोई माया का बाप हूँ, जो ऐसी गधेपन की बातें करूँगा ? फिर मेरे कोई दूसरा बच्चा भी तो नहीं है। किसी अफ़सर से ब्याहूँगा तो वह सबी को भी ले जाएगा और मेरा घर भी लूटेगा। ऊपर से हरदम उसका रोब ही सहना होगा....कितना दब्बू और मरियल-सा तो आदमी है। पेट-भर खाना भी नहीं जुटता। अगर सबी कहेगी तो मैं आँख मूद कर शादी कर दूँगा और घर का एक कमरा दे कर बच्चू से ज़िन्दगी-भर गुलामी कराऊँगा। सबी भी खुश, यह भी खुश। बेटी की बेटी बनी रहेगी घर में, और ऊपर से इतना नाम होगा कि भाई जोगेन्दरसिह सचमुच एक आदर्शवादी आदमी है। अपनी लाडली बेटी को एक ग़रीब से ब्याह दिया। चेहरे उतर जाएँगे कितने लोगों के....लेकिन जब तक सबी खुद नहीं कहती, मैं कुछ नहीं करने का। मैं उससे मिलूँगा, रोज़ नयी आशाएँ दिलाऊँगा और सब कुछ इस तरह टालता जाऊँगा कि ऊब कर एक दिन वह मेरे चेहरे पर झापड़ मरने दौड़ेगा। पर मैं बचूँगा उससे ? नहीं जनाब, आपने जोगेन्दर सिह को नहीं जाना। अगर चाहे तो कुछ भी कर सकता है। उस छोटे नाटक को तो देखा ही है आपने अभी। एक इशारे पर बच्चू का सफाया हो जाएगा। लेकिन मैं खतरे का काम करने से रहा। ऐसा ही होता तो माया आज मेरे साथ न होती ? कौन छीनता उसको मुझसे ? पर मैंने शहीद होना सीखा ही नहीं ! तकलीफ़ सहना भी एक तरह की हिंसा ही हैं।

इसलिए मैं दूसरा गाल भी उसके आगे कर दूँगा। और अगर वह उस पर भी मार देगा तो उसे सहला कर फिर मुस्कराऊँगा। सविता को बुला कर कहूँगा, "देख, सबी, यह सब क्या हो रहा है ? तुम्हारी बात है बेटी,

मैं नहीं समझ पा रहा हूँ। ये अभी बच्चे हैं, दुनिया की समझ नहीं इनको। कोई बात नहीं, कोई....

लेकिन फिर माया....माया का क्या हुआ होगा? इस तरह सबी को तो रोक लूंगा मैं अपने पास, लेकिन माया....जैसे अनजाने ही मैंने उसकी अभ्यास की कापी पर कलम निकाल कर चुपके से आज फिर लिख दिया है, 'कहाँ?'

●

पक्षाघात

उसे एक हल्का झटका-सा लगा था। मछली की तरह तेज़ सरकती हुई गाड़ी को वह धीरे-धीरे ड्राइव कर रही थी कि एक नन्हा-सा बच्चा दौड़ता हुआ सामने आ गया था और उसने ब्रेक लगा कर गाड़ी रोक ली थी। उस समय न तो उसे वैसी सिहरन ही महसूस हुई थी, न उसका दिल ही धड़का था। लेकिन इस समय तो वह....उसने एक ओर चारपाई से झुक कर दीवार पर स्विच टटोला और रोशनी की, फिर पलंग के सिरहाने से तौलिया ले कर माथे और गर्दन से पसीना पोंछ डाला। कमरे की घड़ी की टिक-टिक पहले उसे एकदम सुनाई नहीं पड़ी थी, लेकिन जैसे-जैसे उसके दिल की धड़कन कम हुई, घड़ी की आवाज़ बढ़ती गयी और जब उसे एकाएक दर्शन का खयाल आया तो वह इतनी तेज़ हो उठी कि उसने घूम कर देखा, एक बज कर कुछ मिनट हुए थे। एक बार फिर उसका ध्यान दर्शन के बिस्तर पर चला गया—सिकुड़े हुए चादर पर गंदी गठरी की तरह लुंज-पुंज सोये हुए दर्शन की जगह साफ, धुला हुआ चादर, कम्बल और तकिया करीने से सजे हुए थे और बीच में यह क्या है ?.... अजीब बात है ! उसने झुक कर उसे उठा लिया—रबर के बेबी की केवल एक टाँग, अभी जोड़ पर लगा हुआ धागा भी इसमें पड़ा है। यह आया कहाँ से ? मेरे घर में तो कोई बच्चा भी नहीं—उसने उसे हाथ से दबाया तो टाँग पिचक गयी, लेकिन यह कितना विचित्र है....बच्चे की एक टाँग, सारे धड़ से अलग। उसके रोएँ ऊपर से नीचे तक भभर आये और एक अजीब-सा भय, वितिष्णा और उलझन का मिला-जुला भाव उसके मन पर

छा गया। उसने बच्चे की उस टाँग पर से तुरंत दृष्टि हटा ली पर उसकी पलकों पर वह टाँग चिपक गयी। उसने गिनगिना कर उसे पूरी शक्ति से दूर फेंका, लेकिन वह दर्शन के बिस्तर पर उसी जगह जा कर गिरी, जहाँ पहले थी। अब वह डरने लगी। इधर-उधर देखा तो एकदम सन्नाटा और जाने क्यों उसे अब उसी बेबी के हाथ, दूसरा पाँव, धड़ और सिर से कटी हुई गर्दन, और वे भी सब अलग-अलग दिखाई पड़ने लगे....हवा में झूलने लगे....दीवारों पर उड़ने और रेंग-रेंग कर उसके बिस्तर पर इधर-उधर चलने लगे। वह हाँफने लगी....पसीने की नन्हीं बूँदें जो अभी कुछ मिनट पहले उसके माथे पर सूख गयी थीं, फिर उग आयीं और एक दूसरे से मिल कर बहने लगीं। उसने तौलिया लेने की कोशिश की, लेकिन वह हाथ नहीं लगी। चीखने की कोशिश की, लेकिन गले से साँय-साँय की आवाज़ निकल कर रह गयी। फिर पता नहीं क्या हुआ! आँखें खुली रहीं या नहीं? बत्ती जलती रही या नहीं? जाने क्या हुआ, कैसे हुआ—उसे कुछ पता नहीं और वह उसी तरह एक सिकुड़े हुए कीड़े की तरह बेजान, लुढ़की, सिमटी पड़ी रह गयी।

सुबह पाँच के क़रीब जब दर्शन लड़खड़ाता हुआ घर पहुँचा तो उसने पहली बार रीना को बाहों में लिया—ऐसा नहीं कि रीना और दर्शन कभी पास-पास नहीं सोये, सोये, एक दूसरे को प्यार किया, चूमा पर कुछ ही दिन।

इन कुछ दिनों के आज पाँच-छे वर्ष बीत चुके हैं, इसलिए अगर हमने इसे पहली बार कहा तो कोई ऐसी बड़ी ग़लती नहीं की, लेकिन रीना दर्शन के प्यार करते ही लुढ़क गयी। उसके हाथ बेजान-से इधर-उधर पड़े रह गये, आवाज़ की जगह पर थूक और झाग की राल-सी निकल कर रह गयी।

दर्शन चौंका, नशा हिरन हुआ और उसे लगा कि रीना ने ज़हर खा लिया है।

जाड़े की सुबह के पाँच बजे थे। अँधेरा मोतियाबिन्द की झिल्ली की

तरह आँखों पर चढ़ा था। दर्शन ने खिड़की से बाहर झाँका और लपक कर किसी डाक्टर को फोन करना चाहा, लेकिन उसके पैर लड़खड़ाये, उसने घूम कर फिर रीना को देखा—बेबसी की एक अजीब-सी कातरता और वीरान सौंदर्य....उसका मन जाने कैसा हुआ। उसने रीना के सिर को अपनी गोद में लिया। तौलिया से उसका मुँह साफ किया और उसके गालों को फिर चूमा, लेकिन हाथ से छूटते ही गरदन फिर लुढ़क गयी और वह घबरा कर उठ खड़ा हुआ, फोन तक गया और एक-एक कर कई डाक्टरों को एक साथ सूचित किया—मेरी बीवी को जाने क्या हो गया है, वह बेहोश है। शीघ्र आयें !—उसके मन में पुलिस को भी सूचित करने का खयाल आया, पर जाने क्यों उसे लगा, पुलिस इस क्षणभर के सुख को उससे छीन लेगी। जाने क्यों उसने पूरी परिस्थिति के स्वामी बने रहने के सुख को अपने अन्दर फूलते हुए पाया। एक बार फिर लौट कर रीना के पास गया। उसके बालों को ठीक किया, कपड़े सँभाले और उसे ठीक से लिटा कर फिर उसके माथे पर झुक गया। पाँच बरस पहले की रीना का सजा हुआ सिन्दूर मंडित भाल....फूलों के भीतर से झाँकता हुआ उसका शराबी रंग और मछली की तरह उलट-पुलट जाने वाली सुहागभरी आँखें उसे याद आयीं।....वह पसीने से तर-बतर हो गया। कितनी बड़ी बेवकूफ़ी थी कि वह आग में जान-बूझ कर कूद गया था ! कैसी अजीब बात है, जिसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी। काश रीना ऐसी ही उसे पहले ही मिली होती ! वह मुस्करा कर रह गया। कहीं डाक्टर फिर उसे अच्छा न कर दे ! उसे लगा, उसने नाहक ही डाक्टरों को फोन कर दिया ....अभी अँधेरा थोड़ा बाक़ी था। पल भर रीना को गोद में ले कर सोता, फिर सवेरे....वह पूरा सोच भी नहीं पाया था कि कार का हार्न उसके कानों में काटें की तरह सीधा सूराख़ बनाता चला गया।

डा० सुदेश चक्रवर्ती को देखते ही दर्शन की आँखों से आँसुओं की धारा बह चली। असल में वह रोना नहीं चाहता था, न उसे ऐसा सदमा ही था। पल भर पहले एक झटके के कारण उसके दिमाग़ का जो भारी-

पन उड़ गया था, जाने कहाँ से फिर लौट आया और उसके पाँव फिर हलके पड़ गये। डाक्टर ने धीरे से अपना हाथ उसके हाथों में दे दिया। खुद एक छोटा-सा स्टूल ले कर मरीज के पास जा बैठा। अलकोहल की हल्की बू कमरे में भरी हुई थी, इसलिए उसने घूम कर दर्शन के चेहरे पर आँखें धँसा दीं और उठ कर कमरे की खिड़कियाँ खोलने लगा।

दर्शन चुपचाप खड़ा था। डाक्टर रीना का नब्ज़ देखने लगा। पल-भर भी नहीं बीते थे कि दर्शन रीना की चारपाई पर आ बैठा और डाक्टर को अपनी ओर मुखातिब करके कहने लगा, "मैं शराब कभी नहीं पीता डाक्टर! पिछले पाँच वर्षों तक मैंने जीवन को कुछ जाना ही नहीं—रात-दिन, सुबह-शाम, हवा-रोशनी कुछ भी नहीं। यह मेरा बिस्तर है, और वह....उधर देखो....बाँध की उस निचली वादी में, जो साँप के पेट-सा हल्का दाग़ दिखाई दे रहा है—वही मेरा रास्ता है, जिसके एक-एक रोड़े और पत्थर से मेरी मुलाकात है....नीचे मरघट है डाक्टर! मैं और कुछ भी नहीं जानता।"

सुदेश उसे देखता रह गया। रीना की कलाइयाँ अब पूरी तरह उसके हाथों में आ पड़ी थीं और उसकी सुनहली घड़ी का फ्रेम उसे बेहद ठंडा लग रहा था। उसने दूसरा हाथ भी ऊपर कर लिया था और दोनों हाथों में रीना का हाथ लिये एकटक दर्शन को देख रहा था। उसे पहले तो चिढ़ हुई दर्शन की बातों से, लेकिन जब एक झटके से रीना ने मुँह फेरा और उसका श्यामल, मुरझाया हुआ पूरा चेहरा उसकी आँखों के आगे आ गया तो वह जाने क्यों चुपचाप बैठा रह गया। उसे कुल मिला कर इतना ही लगा कि प्रभाव को बनाये रहने और भूल जाने में बहुत अन्तर है। अनुभवों और दबाओं में रास्ते को छोड़ कर, अपने को पिचका कर निकल जाने में और किसी जगह खड़े हो कर रास्ते के जाने योग्य बन जाने का इन्तज़ार करने में कोई फ़र्क़ ज़रूर है। डाक्टर ने रीना की आँखों के पपोटों को टार्च जला कर ध्यान से देखा, फिर हाथ के नाखून देख कर हार्ट की गति देखने के लिए बेग से स्थेटस्कोप निकालने लगा। अब दर्शन

डाक्टर की ओर गहरी दृष्टि से देख रहा था और डाक्टर जैसे किसी उलझन में फँस गया था।

दर्शन फिर बोल पड़ा, "लेकिन डाक्टर...."

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं साहब, आप तो कमाल के आदमी हैं। आखिर कब से इनकी यह हालत है ?....मुझे तो डर है कि कहीं प्वाइज-निङ्ग का केस तो नहीं है ?"

"प्वाइज़निङ्ग....अच्छा, तो रीना ने....लेकिन अभी पूरा असर तो नहीं हुआ होगा डाक्टर ?...."

डाक्टर ने कड़ी और संदेह भरी निगाह से दर्शन को देखा और उठ खड़ा हुआ। दरवाज़े के बाहर खिड़की के पास रखे फोन के पास गया, सरकारी अस्पताल का नम्बर मिला कर रोगी की पूरी हालत के साथ रिपोर्ट दर्ज कराई और बाहर जाने को आगे बढ़ा था कि दर्शन की आवाज़ सुन कर ठिठक गया, "आपकी फीस डाक्टर !" लेकिन सुदेश के कदम रुके नहीं। तभी पीछे से किंचित तेज़ आवाज़ में दर्शन चिल्लाया, "मैं पुलिस से कहूँगा कि रीना से तुम्हारी दोस्ती है।" डाक्टर सुदेश के आगे कठघरा-सा खिंच गया।

—अगर मरीज़ इस तरह का है तो इसे छोड़ कर जाने का क्या अर्थ हुआ ? मेरा यहाँ आना तो छिप नहीं सकता। फिर मुक़दमे के लिए तो कोई भी बात काफी होगी। पार्टी पैसे वाली है। —इस तरह की कई बातें डाक्टर सुदेश के मन में आयीं, लेकिन वह मोटर की चाबी के रिंग को अँगुलियों में नचाता खड़ा रहा, फिर इस उलझन का एक अजीब पहलू उसकी नज़र में आया, जो बेहद दिलचस्प हो सकता है। वह लौटा और कमरे में जा कर फिर उसी स्टूल पर बैठ गया। रीना की हथेली उसमें जहाँ छोड़ी थी, वहीं पड़ी हुई थी, और अब एक मुरझाये हुए बन्द कमल की तरह लग रही थी। काले रेशम के धागों में बँधा लाकेट जाने कैसे सरक कर उसके गरदन के खुले भाग पर आ पड़ा था और साँस लेने के साथ ही हिल रहा था। चेहरे की विक्षिप्त चेतना जैसे कुछ शान्त और

मृत्यु के नजदीक पहुँच गयी थी और आँखों के खंजन बेसुध-से हो कर अपने आकार को एकदम स्पष्ट कर रहे थे। दर्शन एक ओर लुढ़क गया था। द्वार खुला था। मोटर बाहर खड़ी थी। डाक्टर का दिमाग़ तेज़ चक्कर काट रहा था। कई तरह की बातें, कई तरह के विचार, कई तरह की शंकाएँ और साहस—सब एक गोलाई में एक-दूसरे के पीछे तेज़ी से भागते जा रहे थे।

सरकारी अस्पताल की गाड़ी आयी और डाक्टर सुदेश की दूसरी जाँच को ठीक मान कर लौट गयी। सुविधा के लिए डाक्टर सुदेश ने सरकारी डाक्टर से मरीज़ की जाँच भी करवा ली। रीना को बेहोशी की बीमारी है, यही दोनों डाक्टरों ने निश्चय किया था। सुदेश कोरोमीन देते हुए खिड़की से उस धुंधली पगडंडी को देखता रहा, जो अब तक डस कर उलट जाने वाले साँप के पेट की तरह उजली हो उठी थी और दर्शन का वह वाक्य कि वह मुझे रीना का दोस्त कह देगा, उस पगडंडी पर सूरज की पहली किरन बन कर उतरने ही वाला था।

डाक्टर ने एक इंजेक्शन दिया। रीना कुनमुनाई, पलकें हिलीं और धीरे-धीरे खुलने लगीं। डाक्टर चुपचाप देखता रहा, बोला कुछ भी नहीं। रीना भी उसे देखती रही, एकटक! शायद इतनी शक्ति ही उसमें बाक़ी नहीं कि वह आँखें फेर सके। लेकिन फिर उसने आँखें बन्द कर लीं। वह यही चाहता भी था। तनाव को कम करने के लिए नींद सबसे बड़ी दवा है।

दर्शन रोगी कुत्ते की तरह उस पूरे कनवैस में डाक्टर को घिनौना लगा। बड़ी-बड़ी खिड़कियों से छोटे, फिर बड़े, फिर बड़े होते हुए पेड़ों के अलावा कुछ भी दृष्टि में नहीं आता था—सिर्फ कमरे की हल्की नीली दीवार और रीना का पलंग। डाक्टर ने अपना बैग सँभालते हुए दर्शन को झकझोर कर जगाया। वह चौंक कर उठ बैठा और लड़खड़ाते हुए डाक्टर के पीछे-पीछे बाहर मोटर के पास तक गया।

"हाथ-मुँह धो कर मरीज़ की देख-भाल कीजिए।" कोई दवा देने की

ज़रूरत नहीं। सोने में कोई बाधा नहीं होनी चाहिए। मैं दोपहर एक के क़रीब फिर देख जाऊँगा।" डाक्टर ने कहा और मोटर का दरवाज़ा खोलते हुए यह सोचता रहा कि आख़िर इस आदमी ने उस समय यह क्यों कहा कि मैं रीना का दोस्त हूँ....

डाक्टर चला गया और दर्शन बड़ी देर तक वहीं खड़ा रहा, जहाँ खड़ा था। उसे बिलकुल याद नहीं कि उसने डाक्टर को क्यों बुलाया था, उससे क्या कहा था और अब वह उसे और क्या करने के लिए कह कर चला गया है। अक्सर ऐसे ही लोग दर्शन के पास आये हैं, जो कुछ कह कर चल गये हैं और जो चले गये हैं, वे दर्शन के दिल का उस समय तक का बचा-खुचा खून भी साथ ही लेते गये हैं—मानसिक गुलामी का खून, और दर्शन उन सब पर हँस कर रह गया है। शायद इसलिए कि वह उन्हें बेवकूफ़ समझता है, क्योंकि वे अपनी विजय के बारे में भ्रमित हैं। असल में वे उसी क्षण हार जाते हैं, जब वे दर्शन को निकम्मा और बेमतलब का समझते हैं।

दर्शन लौट कर उसी स्टूल पर बैठ गया और एकटक रीना की आँखों में देखने लगा। कुछ देर ऐसे ही देखता रहा। पलकें फैल गयीं। पुतलियाँ निकल कर दर्शन की आँखों पर चस्पा हो गयीं और उसे हर चीज़ अपनी पूरी गहराई में दिखाई पड़ने लगी। रीना की आँखें देख कर पहले उसे डर लगा, पर जैसे ही उसने उसके चेहरे पर दृष्टि डाली, हड्डियों का एक विस्तृत जाल और खून की नसों में बहता हुआ अल्कोहल....ओह, इतनी शराब कहाँ मिली रीना तुम्हें? और उसने घबरा कर रीना के दिल पर निगाह डाली—सफ़ेद बिना किनारे की कढ़ी हुई धोती और लम्बी बाँहों वाला सफ़ेद ब्लाउज़ पहने रीना कई बच्चों के साथ खेल रही थी। पीछे बड़ा-सा तीन तल्लों वाला मकान था, जिसके आगे सन्तरी खड़ा था और मोटरों की लम्बी-सी क़तार के पीछे से दर्शन दौड़ता हुआ चला आ रहा था। रीना के लिए कोई संदेश था उसके पास, लेकिन वह है क्या? एक मुनीम का लड़का, जिसका बाप काँपता हुआ दुर्गाबाई के आगे घंटों

खड़ा रहता है।

दर्शन अपने बाप की लम्बी तोंद देख कर विक्षिप्त हो गया, जिसमें कितनी ही मुर्दा लाशें मुट्ठियाँ तान-तान कर गगनभेदी नारे लगा रही थीं। दुर्गाबाई के सफेद वस्त्रों के नीचे कोढ़ के भद्दे दाग़ थे और महल के ऊपर गिद्धों की एक पाँत मँडरा रही थी। दर्शन ने देखा कि उसका बाप ज़मीन पर बैठा एक बर्तन में ज़हर घोल रहा है। सेठ लक्ष्मीचन्द एक लड़का गोद लेना चाहता है और दुर्गाबाई जानती हैं कि गोद लिया जाने वाला लड़का उसके परिवार का है। बूढ़ा सठिया गया है, अब उसे जाना चाहिए। और लक्ष्मीचन्द करोड़ों की मिल्कियत पीछे छोड़ गया।

दर्शन ने यमदूतों को देखा—उनकी विकराल आकृतियाँ, उनके बड़े-बड़े दाँतों के कारण और भी डरावनी हो उठी थीं।

फिर उसे एक अजीब-सा दृश्य दिखा। रीना के दिल के पिछले हिस्से में एक सजा-सजाया कमरा है और दुर्गाबाई तथा उनका मुनीम क्रम से रीना और दर्शन के कपड़े उतार रहे हैं—उन्हें नंगा कर रहे हैं। दीवारें सटती आ रही हैं। हवा ऊपर को उड़ रही है और एक खोखलापन बढ़ता जा रहा है। दर्शन घबरा गया। उसने जल्दी-जल्दी आँखें भीचीं, निगाह झिपकाई तो देखा वह नींद में स्टूल पर से लुढ़क गया है। रीना चुपचाप सो रही है। किरणों की सुनहली बिल्ली आदमी की आहट पा कर फ़र्श से खिड़की पर चढ़ने के लिए उछलती है, लेकिन फिसल-फिसल जाती है।

नौकर काम पर आ गये हैं। शोफर गैरेज से गाड़ी निकाल कर साफ़ कर चुका है। इन्तज़ार है कि रीना अभी निकलेगी, कहीं बाहर जाएगी और एक बजे लौट कर आयेगी। तब तक के लिए सबको अलर्ट रहना है, लेकिन रीना नहीं निकली। दर्शन स्टडी में घुस कर आराम कुर्सी पर फिर लुढ़क गया। इसी बीच परेश आया, सीधे अन्दर गया और दर्शन को इस तरह स्टडी में पड़ा देख कर ठठा कर हँसा। आवाज़ गूँज कर लौट आयी और दर्शन उठ बैठा।

"मुद्दत के बाद तो दो घूँट पी और अब तक उसी में भूल रहे हो!"

उसने इतनी ज़ोर से दर्शन की पीठ थपथपाई कि वह गिरते-गिरते बचा। तभी डाक्टर की मोटर आ गयी। हाथ में बैग सँभाले वह गैलरी में घुसा और कमरे के सामने आते ही उसकी मुठभेड़ परेश से हो गयी। "हल्लो डाक्टर सुदेश....किस पर आफ़त आ गयी ?"

"तुम्हें मालूम नहीं ?"

"रीना तो अच्छी...." परेश के चेहरे पर हवाइयाँ उड़ने लगीं।

"आ कर देखो !" डाक्टर तेज़ी से क़दम बढ़ाता अन्दर चला गया।

परेश पल भर को लड़खड़ाया, लेकिन डाक्टर कह चुका था और पीछे दर्शन खड़ा था।

परेश चुपचाप खड़ा रहा। दर्शन एक कुर्सी के सहारे मरीज़ को उड़ती निगाह से देखता रहा। डाक्टर ने नब्ज़ पर हाथ रखा और रीना चिल्ला पड़ी, "नहीं परेश, अब रहने दो....मुझे कोई डर नहीं परेश ! दर्शन बिलकुल नाराज़ नहीं होगा। मैं बचपन से यही सोचती हूँ कि माँ बनू और किसी बच्चे के साथ खेलूँ। सिर्फ इसी एक इच्छा को मारते-मारते मैं एकदम मर गयी, लेकिन यह आज तक नहीं मरी।" डाक्टर बिना किसी उत्तेजना के सुनता रहा और रीना की कलाइयों को उसी तरह सँभाले रहा। परेश के आगे सारा कमरा घूम उठा, लेकिन हर चक्कर पर जैसे सारी व्यवस्थाएँ जैसी-की-तैसी बनी रहीं। डाक्टर बैठा रहा, दर्शन खड़ा रहा और रीना अपने हाथों में अपना सिर बाँधे रही।

आया, नौकर और ड्राइवर दरवाज़ों से आ लगे थे। डाक्टर ने मुड़ कर सबको चले जाने के लिए संकेत किया और रीना का सिर सँभालते हुए बोला, "रीना जी, देखिए मैं हूँ, डाक्टर !"

रीना ने आँखें खोलीं, "यहाँ कहीं परेश था क्या ?" मुझे लगा जैसे उसकी हँसी की आवाज....."

"परेश जी !" डाक्टर ने उलट कर पीछे देखा तो वह जा चुका था। रीना मुस्कराई। यह मुस्कान ठीक वैसी ही थी जैसे डाक्टर को जाते हुए देख कर सुबह दर्शन मुस्कराया था।

"अब वह नहीं लौटेगा !" रीना ने लम्बी साँस छोड़ते हुए कहा।

"कोई बात नहीं, आप आराम करें ! मैं कुछ दवाइयाँ लिखे देता हूँ।" और दर्शन की ओर मुड़ा, "हाँ, मिस्टर दर्शन बधाइयाँ, रीना प्रैगनेन्ट हैं।" फिर पल भर रुक कर डाक्टर सुदेश ने रीना की आँखों में देखा—एक सपना तैर आया था उनमें, पानी की पतली-सी सतह पर डा० को अपना ही चेहरा दिखाई पड़ा।

"बेहतर हो आप मेरे नर्सिंग होम में चली चलें। महीने-दो-महीने वहाँ रहने में कोई हर्ज़ नहीं। हर तरह की सुविधा रहेगी ! इस समय ऐसे ही ख़ौफ़नाक ख़याल मन में आते हैं। कहीं दो-चार बार इसी तरह डर गयीं तो पक्षाघात...." जैसे डाक्टर को अपना चेहरा ही उसे टेढ़ा होता हुआ मालूम हुआ और बायीं ओर के पूरे अंग में एक सनसनी दौड़ गयी।

श्रीमती रीना को पक्षाघात हो गया। यह बात अब तक बहुत से लोग जान चुके हैं, कम-से-कम वे सारे लोग जो उसे जानते थे या उसमें कोई दिलचस्पी रखते थे, लेकिन रबर के बबुए की टाँग वाली बात केवल वह क्षण मात्र जानता है, जो अपने प्रवाह में आ कर रीना के आगे से अनदेखे ही काल के हहाते हुए सागर में चुपचाप सरक गया था।

●

ভূমিকা

आप खुद सोच सकते हैं कि मोटी तनखाह लेने के साथ ही जिसे सज़ा देने का अधिकार नहीं है, वह भी कोई अफ़सर हुआ—मैं भी पहले यही सोचता था और कुर्सी पर बैठे-बैठे मेरे कलेजे में चींटियाँ काटा करती थीं, लेकिन एक दिन जब एक जाने-माने लेखक मेरे कमरे में आये और बातें करते-करते उनकी आँखें बरसने लगीं तो मेरे कलेजे से चीटियों का वह गुच्छा एकदम हट गया।

इतने अच्छे लिखने वाले के घर खाने के लाले पड़े हैं और मैं ऐसा कि उनकी भूख हर सकता हूँ—मुझे तो यह मालूम ही नहीं था! मैंने उन्हें कई काम दिये। शहर में उन दिनों हैज़े की बीमारी फैली हुई थी, इसलिए हैजे के विरुद्ध तुरत जेहाद छेड़ने का कार्यक्रम था। मैंने डाक्टरों द्वारा प्रचारित एक पर्चा दफ्तर से तुरंत मँगवाया और उन्हें देते हुए बोला, "देखिए इसे पढ़ कर एक नाटिका लिख भेजिए। मैं और भी चीज़ें आपसे लिखवाऊँगा।.... आप खादों के बारे में तो जानते ही होंगे और अगर न भी जानते हों तो कोई बात नहीं, उसके लिए कोई पैम्फलेट दूँगा, पढ़ कर एक ऐसा गीति-नाट्य लिखिए कि वह घर-घर में गूँज उठे!" इतनी बातें करने के बाद जब मैं उन्हें चाय पिलाने लगा तो मुझे उनके एक लेख का स्मरण हुआ, जो उन्होंने अभी कुछ दिन पहले ही छपाया था। बड़ी चर्चा हुई थी उस लेख की। लेकिन मेरे बारे में क्या लिखा था इन्होंने,—साधारण प्रतिभा के कवि में भी युग सत्य को समझने की जो दृष्टि होती है, वह भी इनमें नहीं है।

युग सत्य....हा-हा...., युग सत्य....ही-ही, युग सत्य....
हीं....हीं....हीं....ईं....ईं....ईं

लेकिन सच मानिए मैं हँसा नहीं। कोई ऐसा छिछोरा नहीं हूँ कि ऐसे बेमौके हँस कर अपने को हलका करता। उल्टे और भी गम्भीर हो कर बोला कि देखिए मैं आप ही लोगों की सेवा के लिए हूँ। यहाँ कलाकारों के लिए कोई रोक-टोक नहीं। जब जी चाहे आइए....सुनिए-सुनाइए।

जब वे जाने लगे तो मैंने उन्हें एक बार और रोका और सोचने के बहाने पल भर अपनी खल्वाट खोपड़ी पर हाथ फेर कर बोला, "अगर आप चाहें तो कोई नाटक भी भेज दें और अगर थीम वगैरह की बात बता दें तो और अच्छा रहे।" बेचारे आभारी थे वे....कहने लगे, "कुछ संकेत दीजिए!" तो मैंने कहा कि "एक नये आदमी की तसवीर खींचिए आप....कैसा रहेगा?" और मैं फिर हँसा। वे भी हँसे पर दबे-दबे...."उबड़-खाबड़ मार्ग में बाधाओं को रौंदते हुए बढ़ने वाला आदमी, नव निर्माण की ओर बढ़ता हुआ आदमी...."मैं बोलता रहा और वे सुनते रहे, फिर उसी समय मेरा सेक्रेटरी पत्रों के उत्तर लिखाने आ गया। मैंने उन्हें छुट्टी दे दी, लेकिन पत्र मैं लिखा नहीं सका। सेक्रेटरी को कुछ देर रुकने के लिए कह कर मैं बाथरूम गया। फिर अपने पिछले कमरे में जा कर मैंने ज़ोर की साँस ली। चींटियाँ कहीं भी नहीं थीं....मैंने खामखाह समझ लिया था कि मैं सजा नहीं बोल सकता, कोड़े नहीं लगवा सकता। सचमुच अफसर तो मैं ही हूँ—अफसरों का अफसर। अगर अफसर कोड़े लगा कर खून निकालता है, तो मैं उस पर नमक छिड़क कर आदमी की तिलमिलाहट का मजा लेता हूँ। सबसे बड़ी बात तो यह है मेरे साथ कि मेरे हाथ में नमक कहीं दिखाई नहीं पड़ता—मुँह से मरहम-पट्टी की बात और हाथों में खुश-बूदार गुलदस्ते। धीरे-धीरे आधुनिक जीवन की सच्चाइयों की वह कील मैंने पा ली है, जिसे पाने में अभी बड़े-बड़े चिन्तकों को पचास बरस लगेंगे। सच्चाइयाँ कटु होती हैं पर होती हैं, इसलिए आदमी को उनसे आँख मिलानी होगी। इसीलिए मैं कहता हूँ कि नैतिक मानव-मूल्य केवल

डाक्टर की ओर गहरी दृष्टि से देख रहा था और डाक्टर जैसे किसी उलझन में फँस गया था।

दर्शन फिर बोल पड़ा, "लेकिन डाक्टर...."

"लेकिन-वेकिन कुछ नहीं साहब, आप तो कमाल के आदमी हैं। आखिर कब से इनकी यह हालत है ?....मुझे तो डर है कि कहीं प्वाइज-निङ्ग का केस तो नहीं है ?"

"प्वाइज़निङ्ग....अच्छा, तो रीना ने....लेकिन अभी पूरा असर तो नहीं हुआ होगा डाक्टर ?...."

डाक्टर ने कड़ी और संदेह भरी निगाह से दर्शन को देखा और उठ खड़ा हुआ। दरवाज़े के बाहर खिड़की के पास रखे फोन के पास गया, सरकारी अस्पताल का नम्बर मिला कर रोगी की पूरी हालत के साथ रिपोर्ट दर्ज कराई और बाहर जाने को आगे बढ़ा था कि दर्शन की आवाज़ सुन कर ठिठक गया, "आपकी फीस डाक्टर !" लेकिन सुदेश के कदम रुके नहीं। तभी पीछे से किंचित तेज़ आवाज़ में दर्शन चिल्लाया, "मैं पुलिस से कहूँगा कि रीना से तुम्हारी दोस्ती है।" डाक्टर सुदेश के आगे कठघरा-सा खिंच गया।

—अगर मरीज़ इस तरह का है तो इसे छोड़ कर जाने का क्या अर्थ हुआ ? मेरा यहाँ आना तो छिप नहीं सकता। फिर मुक़दमे के लिए तो कोई भी बात काफी होगी। पार्टी पैसे वाली है। —इस तरह की कई बातें डाक्टर सुदेश के मन में आयीं, लेकिन वह मोटर की चाबी के रिंग को अँगुलियों में नचाता खड़ा रहा, फिर इस उलझन का एक अजीब पहलू उसकी नज़र में आया, जो बेहद दिलचस्प हो सकता है। वह लौटा और कमरे में जा कर फिर उसी स्टूल पर बैठ गया। रीना की हथेली उसमे जहाँ छोड़ी थी, वहीं पड़ी हुई थी, और अब एक मुरझाये हुए बन्द कमल की तरह लग रही थी। काले रेशम के धागों में बँधा लाकेट जाने कैसे सरक कर उसके गरदन के खुले भाग पर आ पड़ा था और साँस लेने के साथ ही हिल रहा था। चेहरे की विक्षिप्त चेतना जैसे कुछ शान्त और

को नख-दंत विहीन करके उसे अर्जित किया है, वह जाने कब, किन क्षणों में मेरे हाथ से फिसल चुकी है। ऐसा नहीं कि उसे मैंने जान-बूझ कर छोड़ दिया। जहाँ तक मुझे याद पड़ता है, बचपन में ही वह मेरे हाथ से फिसल गयी और गयी तो मैं तड़प कर रह गया, लेकिन वह वापस नहीं लौटी। असल में मैं बहुत कोमल और दब्बू था, बचपन में। राह चलते किसी को हँसते देखता तो लगता मेरे ही ऊपर,हाँ, शायद मेरी ही बातें लोग कर रहे हैं और मैं अपने कपड़े देखने लगता था। कहीं निकर के बटन लगाना तो नहीं भूल गया। कल उस लड़के को देख कर सारी कक्षा के लड़के कितने हँसे थे, एक मैं ही था जो खामोश रह गया था और वह लड़का सामने का एक बन्द बटन भी खोल कर मेरे ठीक सामने खड़ा हो गया था,"हँसता क्यों नहीं बे ...जनखा !" और आप विश्वास नहीं करेंगे पर मैं आज तक उसकी शकल नहीं भूला, जो उसके नेकर के नीचे था, लेकिन शुरू में कई दिन तो मुझे ऐसा लगा, जैसे वह हर क्षण मेरे आगे है....मैं अकेले में रो पड़ा था और सोचता रहा था कि जब सब लोग हँस रहे थे तो मुझे भी हँसना चाहिए था और मैं जीवन मे पहली बार इस तरह हँसा, जिसे अभी-अभी आपने सुना है—ही....ही....ही....पहले तो मुझे खुद ही विचित्र लगी थो इस हँसी की ध्वनि पर जब मैं शीशे में अपना मुँह देख कर हँसने लगा तो फिर मुझे अपने ऊपर दया आयी। जाने क्यों मेरे होठों के कोर बहुत दूर तक खिच कर दाँतों पर ऊपर चढ़ जाते थे और मेरी खीस निकल आती थी। सहसा उस शीशे वाले चेहरे पर मेरी आँखें गड़ गयीं और मैं देखता रहा—निश्चल, गम्भोर, फिर जाने क्यों, किस तरह मेरे मन-प्राण पर एक कुहरा-सा छा गया और मेरा गला भर आया। मैंने शीशे वाली आँखों में उमड़ते हुए आँसू देखे और पल भर में ही शीशा गुणहीन हो गया—पहले हल्का धुँआ, फिर एकदम अंधा। मुझे याद नहीं कि इस तरह मैं कितनी देर रहा पर जब मैंने आँखें पोंछी तो मेरा मासूम चेहरा रस और आर्द्रता से नहाये हुए सुबह के ताजे फूल की तरह कोमल और सलज्ज हो उठा था....जैसे किसी लड़की की पहली बार अपने

प्रेमी से आँखें मिल गयी हों। अनायास ही मैं आँखें नचा कर उस चेहरे से ठुनक उठा, "जाओ, मैं नहीं बोलती !" और पल भर मैं मान किये बैठा रहा, पर यह ख्याल आते ही कि यह मैं क्या कर रहा हूँ, मैं ही-ही-करके हँसने लगा और शीश के सामने से हट गया।

मैं सोचता हूँ, मेरे अन्दर सहजता होती तो मैं भी साधारण और सामान्य ही होता। लोग मुझसे मिलते, बातें करते और भूल जाते। पहले मुझे कुछ उलझन जरूर होती थी, लेकिन तब मैंने सिद्धान्त निर्मित नहीं किये थे और कभी-कभी मेरे अन्दर भावावेग उभर आते थे। उनका भी मैंने धीरे-धीरे गला घोंट दिया। अब तो मैं यहाँ तक सिद्धहस्त हूँ कि अगर मुझे यह मालूम भी रहे कि आप मुझे चापलूस समझते हैं तो भी मैं चापलूसी करूँगा और आपके चेहरे पर हर उस भाव को आते-जाते देखता रह सकूँगा, जहाँ आप को मार सकता हूँ। कई लोग मुझसे सतर्क हो कर मेरे सामने बैठते हैं और मैं जानता हूँ कि वे मुझे खूब समझते हैं और मुझसे घृणा करते हैं, लेकिन आपको ताज्जुब होगा यह जान कर कि मैं जो चाहता हूँ, वे वही करते हैं और मेरी बात मान कर सिर हिलाते हुए मेरे दफ्तर से लौटते हैं—आखिर बेचारे आदमी ही तो हैं। मैं उनकी कमजोरियों को सहलाता रहता हूँ और धीरे-धीरे उन्हें अपने हाथ का इस कदर आदी बना देता हूँ कि दूसरा हाथ रास आता ही नहीं।

....आवाज़ मधुर थी फोन की घनत्व, जरूर कम था, लेकिन थोड़ी कोशिश करने पर चल जायगी। जाने क्यों मुझे इस महिला के बात करने का ढंग अच्छा लगा। "आत्मीयता के भाउक प्रसंगों के लिए हमारे पास कोई अच्छी आवाज़ भी नहीं है, मि० कपूर ! देखिए अब पश्छिमी जी की श्यामा के लिए हम किसे बुक कर सकेंगे ?" मैंने पेपर पर दस्तख़त करके कपूर के उदास मुखड़े को देखा और अनजाने मेरी गर्दन बगले की तरह आगे को खिंच गयी और होंठ दातों पर चढ़ गये, "यार तुम बड़े सुन्दर लग रहे हो, क्या बात है !" मैंने एक शेर कहना ही चाहा था कि फिर फोन की घंटी किनकिना उठी, "....बड़ी देर कर दी तुमने....कब से मेरा मन....हाँ,

हाँ, दोनों दवाइयाँ साथ लेनी हैं....एक के बाद दूसरी....सिर दर्द कैसा है....उठो नहीं....मैं सीधे आऊँगा....अच्छा !" मणी का नाम सुनते ही मैं उच्छ्वसित हो कर ही....ही करने लगा, "जरा देना तो उसे फोन....हल्लो मणी,....आज उधर पहुँच गये....मैं तीन ही बजे से....कोई बात नहीं.... नीरा को ज़रा देखना....अच्छा, बुखार तेज़ है ? देखो यही बात है। आज मुझसे कह रही थी, बहुत ठीक है—दवाइयाँ देते रहना और देखो, उठे नहीं....अच्छा...."

कपूर अभी उसी तरह बैठा था और उसके चेहरे पर ऊब के भाव लक्षित होने लगे थे। सामने ऐसे कागज़ थे, जिन पर तुरंत आदेश ज़रूरी था, लेकिन यह कपूर से अधिक मेरी जिम्मेवारी का काम था। कपूर इतना इन्तजार करने वाला कर्मचारी तो नहीं। कहीं सारा की चिन्ता तो इसे नहीं, हो न हो इस आवाज़ में उसकी दिलचस्पी हो और उसने समय दे कर फोन कराया हो ! मौका अच्छा है, कपूर को ठीक करने का। बिना कोर दबे यह क्यों कर झुकने का।

"देखो कपूर, कोई मिस सारा हैं....अभी यह फोन...." मैंने कपूर के चेहरे में एक हिलती हुई परछाई देखी, जो सदा से मेरी शिकार होती आयी है—एक कमज़ोरी, जिसे मैं हमेशा आवाज़ के बाणों की नोक पर रख कर इस युग के आकाश में उछालता हूँ और पाता हूँ कि इस अनोखी 'टास' में चित्त भी मेरी-पट्ट भी मेरी। इसलिए मैं सिर्फ आवाज़ को सत्य मानता हूँ—शब्द को नहीं, कंठ को।

"....देखो, ऐसा करो कि पच्छिमी जी के नाटक के लिए तुम सारा को एक नोट के साथ प्रस्तावित कर दो....और हाँ, वह मणी है न, भाई उसे भी कुछ सिखाओ ! इसी में उसे भी ले लो....दोनों को एक ही साथ मेरे पास भेजो....फारमेलटीज़ पूरी कर ली जाँएगी....अच्छा !"

"बहुत अच्छा साब !" कपूर थिरकता हुआ चला गया।

लेकिन समस्या मेरे सामने मणी है, कपूर नहीं। कपूर को तो आपने देखा कि एक हल्के से दाँव पर चढ़ कर सिघरी मछली की तरह उलट

गया। अब सारा इसी बहाने घर से यहाँ आएगी और कपूर के टूटे हुए दिल की सीढ़ियों पर लड़खड़ाती फिरेगी। कपूर को क्या मालूम कि ऐसी लड़खड़ाहट का मतलब क्या है, इसके लिए देखने वाला चाहिए। इन चमकीली सरसराती हुई साड़ियों के नीचे....अब इस अन्तर-गुहा से मेरा डर छूट गया है, जो भी हिचक थी, उसे मणी ने छुड़ा दिया। मेरे चेहरे पर जाने कैसी सिकन आ गयी। इस सिकन के आते ही मैं अपने चेहरे को सामने मेज़ पर पाता हूँ। इतना अभ्यास है मुझे इस हँसी का कि हर जगह मैं खुद अपना आइना बन जाता हूँ।

कपूर कहेगा साहब बड़ा उदार है, पर अगर मैं मणी के लिए उससे अलग से कहता तो दस जगह कान भरता। और मणी, अब उसे ठीक करना ही होगा....मैं अक्सर उस आदमी को वह सब दे देता हूँ, जो वह चाहता है, क्योंकि मेरे पास देने को है ही क्या ? मात्र आवाज़, और इस तरह देखता हूँ कि सारी भौतिक दुनिया पिघल कर एक भाव बन जाती है और इस भाव में आवाज़ का संचरण मनमाना हो सकता है, लेकिन जब मैं सहसा एक दिन आवाज को पकड़ कर उससे बाहर खींच लेता हूँ, तो एक ऐसी जगह बन जाती है, जिसमें कुछ दूसरा समा ही नहीं पाता। लाख करो, लाख सिर पटको, यह जगह भरने की नहीं, इसलिए परम्परा वाला ठोस आदमी मुझे मिट्टी के ढेले की तरह लगता है और जब मैं उसे अपनी आवाज़ के बाणों पर साधता हूँ तो वह पल भर में भुस से ढह जाता है और उसके सारे मानव-मूल्य बिलबिला कर उससे अलग जा पड़ते हैं !....स्पीकर किरकिराकर रुक जाता है....कोई मुझे तो नहीं चाहता ! मैं बटन दबा देता हूँ,....हलो...हलो सुन कर दूसरा हाथ स्विच पर बढ़ जाता है। रघू पच्छिमी जी के नाटक के लिए इफेक्ट्स बना रहा है। चाहता है कि साहब सुन लें !

—दूर पृष्ठभूमि में तूफान की एक हल्की-सी झुरझुरी पर प्यानों का एक धीमा नोट रेंग-रेंग कर सिर धुन रहा है और पास से कराह की अकेली पतली-सी साँस टूट-टूट कर स्वर के बिन्दुओं से जुड़ रही है। एक

सम धरातल पर आवाजें एक दूसरी की तरफ सरक रहीं हैं। अभी मिल जाएँगी....मिल जाएँगी....मिल जाएँगी—जाने क्यों मैं दोनों हाथों से अपना माथा दबा कर उफ् कह उठता हूँ। लगता है, मैं ही वह पात्र हूँ, जो आवाज़ों की इस आंख-मिचौनी में कराह उठी है....मणी, मैं तुम्हारा खून कर दूँगा ....मैं तुम्हें आवाज़ों के इस खोखले नगर में ले आऊँगा और धीरे-धीरे गला कर एक द्रव पदार्थ बना दूँगा।

—मेरे आँगन की वह बया किस तरह ज़रा-से स्पर्श से दुबक कर मुट्ठी भर हो जाती थी और हवा के अबीरी झोंके उसके चेहरे में चुभ-चुभ कर उसे बेहाल कर देते थे, फिर किस तरह धीरे-धीरे वह बया फुदकने लगी थी और मेरा आँगन-घर उसकी उनींदी आँखों की उदासी से भर गया था। मुझे डर था, कहीं मेरी आवाज़ की नोकों पर चढ़ी यह बया एक दिन लड़खड़ा कर, ज़मीन पर न चू पड़े, इसलिए मणी आया था। आया नहीं, लाया गया, वह भी दीन-हीन और सहायता की असहाय आवाजों के खोल में लपेट कर जब मैं उसे नीरा के पास ले गया था तो वह मेरे सहानुभूति के स्वरों को छू-छ कर रोमांचित हो उठी थी।

मेरी बया उड़ती ही रही। अब धुनी हुई लाल रुई के रेशों से मेरे आँगन का आकाश भरने लगा। चकपकाई हुई बेचैन आँखों में एक दूसरी ही रोशनी उभरी।

"तुम्हें फिर रात नींद नहीं आयी ?"

"क्यों, मैं तो जानती भी नहीं कि तुम कब आये !"

'और यह भी नहीं कि मैं कहाँ सोया ?"

"वह तो देख रही हूँ....नीरा ड्रेसिंग गाउन का बटन ठीक करने लगती है, "मैं समझ नहीं पाती कि तुम ख़ामख़ाह मुझे क्यों तंग करते हो !" वह ड्रेसिंग गाउन का पिछला हिस्सा छू कर किसी चिपचिपाहट से गिनगिनाते हुए, उसे उतार फेंकती है और ब्लाउज़-पेटीकोट पहने उठ खड़ी होती है। चाय की तरफ़ बिना ध्यान दिये मणी के बारे में नौकर से पूछती है।

आवाज़ों को शकलें बनने लगती हैं। —ओह, मैं इन्हें छू सकता हूँ। ....नीरा फिर लौट पड़ती है, "क्या रखा है, इन बातों में। मणी इसीलिए तुमको...."

"नीरा....!" मैं चीख पड़ता हूँ।

स्पीकर की एकाकी कराह एकाएक बंद हो जाती है। पियानों द्रुत हो उठता है, और एक उलझन भरी धुन, स्वर की आखीरी सीमा पर जा कर सहसा नीचे को उतर आती है, फिर एक मोटा स्वर रुक-रुक कर रेंगने लगता है, '....अब नहीं सहा जाता। मेरी आत्मा के तार-तार इस तरह न खींचो....वह मरेगी नहीं—नहीं....।" स्पीकर बोलता है।

"मरेगी, मरेगी, और मर कर रहेगी।" मैं बोल पड़ता हूँ। "यह मनोविज्ञान नहीं है, और वह भी नहीं, जिसे आदमी ने मानव-मन के परम्परागत अनुभव से पाया है। मेरा मनोविज्ञान परम्परा-विहीन होगा और आने वाले युग मे आदमी एक अलग, एकदम अलग क्षण का स्वामी होगा, जिसमें किसी की हिस्सेदारी....लोग कहते हैं, पौरुष सत्य है प्रेम के लिए। मैं कहता हूँ, स्वर सत्य है—मात्र कंठ !"

मैं उस दिन चुप रह गया। नीरा नहा-धोकर मणी के पास गयी और दोनों टहलने चले गये। मैं दफ्तर चला आया। लौटने पर उसने फोन किया। मैंने उठाया और बिना बोले कानों से लगाये रहा। जब वह बोल चुकी तो कहा, "बस !" और फोन रख दिया। रख तो दिया, पर कलेजे मे एक बबूले का वेग उठा। चीटियाँ कलेजे में चिपक गयीं। मेरी आवाज़ का गला फँस गया....मेरी आवाज़ ने शकल ले ली....मेरी आवाज़ के हाथ-पाँव उग आये....मेरी आवाज़....

मैने दफ़्तर में एक नोट छोड़ा और घर चला गया। नीरा वैसी दुखी नहीं थी, जैसा उसका फोन वाला स्वर। दरवाज़ा बन्द करके मैं रोने लगा। आज वह हास्यास्पद लगता है—निरा सपना, पर मैं करता ही क्या ! काश मैं पहले ही रो कर शीशे में अपनी शकल देख चुका होता।

"यह क्या तमाशा है, जरा अपनी शकल देखिए शीशे में !" नीरा

कुछ दूर से ही बोली । मैंने लपक कर उसके पाँव पर हाथ रख दिया, "नीरा माफ करो मुझे, ग़लती हुई। मणी के बिना मैं भी नहीं रह सकता, मैं भी...." और नीरा ने मुझे बाहों में समेट लिया। हम वैसे ही सिमटे बिस्तर में जा पड़े और पड़े रहे। लेकिन थोड़ी देर बाद ही नीरा कसमसा कर उठ बैठी और मेरी टाई, कोट, पैंट....पैंट के नीचे अन्डर वियर नहीं है नीरा, रुको....लेकिन नीरा मानी नहीं और मैं उसकी जाघों को अपने दोनों पैरों में कस कर उसकी गोद में दुबक गया।

"हूँ:" के साथ उपेक्षा की हँसी,

"मेरी धोती गंदी न हो!" नीरा लय को बीच में ही काट देती है। आवाज़ का टूटना कितना भयंकर है, और फिर उन टूटे हुए टुकड़ों का ठोस पदार्थ बन जाना तो और भी डरावना। मुझे डर लगता है, बोलने में। धीरे से अलग हो कर, कपड़े पहनता हूँ और बैठक में चला जाता हूँ।

स्पीकर ठंडा हो गया है। अब उसमें से सनसनाहट भी नहीं आती। मैं एक-दो बार बटन नीचे ऊपर करता हूँ, तो फिर हलो....हलो सुनाई पड़ती है, एक सनसनी उभरती है और बौछार का स्वर गूँज उठता है। सहसा कड़्-कड़् करके बिजली गरजती है और बादलों के भीतर टूट-टूट कर झर पड़ती है। तभी शर्मा सिर झुकाये आता है और बिना बैठे ही दूर से बोल उठता है, 'साहब सुना आपने? टिन की पत्तरें कुछ मोटी हैं। गरज में वह लोच नहीं उभर रही है।" तभी फिर कड़कड़ाहट होती है। "तुम फोन करके दूसरी पत्तरें मँगा लो! आभास एकदम ठीक उभरना चाहिए। हमारा यह प्ले बाहर भी जाएगा, और हाँ, फेडर पर तुम्हीं बैठो। लोच, कन्ट्रोल से भी पैदा की जा सकती है।"

शर्मा, "बहुत अच्छा साहब!" कह कर चला गया, पर स्पीकर पर बादलों की गरज होती रही। क्षण भर को उस दिन रात की बारिश के मेघ मेरे कमरे की छत से आ लिपटे। मैं चुप था, लेकिन उस तरह नहीं, जैसे साधारण आदमी होता है। मैं अपनी खामोशी के प्रभाव के प्रति भी सचेत रहने का आदी हूँ। आखिर मैं क्यों चुप हूँ! क्या आप इतने बहरे

हैं कि आपके कानों में मेरी खामोशी की आवाज़ नहीं पहुँचती। कम-से-कम मणी से तो मैं उम्मीद करता ही था, लेकिन वह हँसता ही रहा था—बात-बात में किलकारियाँ, "बहुत अच्छी तसवीर हैं, आपको खुशी होगी।"

"कैसी तसवीर?" मैंने अपना संतुलन खो दिया था, लेकिन मुझे मालूम था कि इस समय मेरा चेहरा कैसा हो उठा है!

"नीरा जी ने आपको बताया नहीं क्या! हम लोग तो...." वह बात पूरी भी नहीं कर पाया था कि मैं तड़प उठा, "वह नही जाएगी।"

मणी जैसे बुझ गया हो और भीतर ही कोई ऐसी चीज़ खोज रहा हो, जिससे मेरी आवाज़ की जगह को भर ले। वह कसमसाया, हिला और उठ कर बाहर हो गया। बौछार तेज़ थी। बादल धँस-धँस कर कड़क रहे थे और मैं कमरे में चक्कर काट रहा था। यह तो ठीक नहीं हुआ। तभी नीरा सजी-बजी कमरे में आयी, "मणी कहाँ गया?"

मैं चुप।

उसने मेरे चेहरे पर आँखें गड़ा कर पूछा, "मणी कहाँ गया?"

"तुम बाहर नहीं जाओगी!" मैंने उसकी आँखों की जलन से अपने चेहरे को परे करके कहा।

"अच्छा, तो तुमने उसे मना कर दिया है!" मैं उसकी आवाज़ की नोंक पर था और जाने कितनी तेज़ी से खोखले आसमान में धँसता चला गया था, क्योंकि वह उसी रास्ते, उसी ओर बढ़ती चली गयी थी, जिधर से मणी अभी जा चुका था। मैंने बढ़ कर रोका तो उसने अपने हाथों से मुझे अलग करते हुए कहा, "जा कर उसे वापस लाओ!"

"बारिश है, मणी।"

"तो मैं ही जाती हूँ!"

स्पीकर पर वह अकेली कराह बादलों की कड़क से ऊपर चढ़ रही थी। उसके स्याह, डरावने पंजे आसमान को नोचने ही वाले थे कि किसी के खिस से हँसने की आवाज़ से मैं तिलमिला उठा, एक हाथ से स्विच

बन्द करके भीतरी फोन का हैंडिल घुमाया और घंटी मिलते ही, "हां, कौन बोल रहा !"

.....

"मेरी आवाज़ नहीं पहचानते, क्या नाम है तुम्हारा ?"

फोन रख कर, घंटी बजा कर चपरासी को बुलाता हूँ। थोड़ी ही देर में सामने राजीव खड़ा है। पारा निशान के ऊपर है।

"तुम्हें यहाँ काम नहीं करना है क्या ? बदतमीजी की भी कोई हद है ?" वह चुपचाप मुझे देख रहा है।

"तुम मेरी आवाज़ नहीं पहचानते ! हैरत की बात है कि अपने बास की आवाज़....!"

वह अब भी चुप है।

"मैं कुछ भूँक रहा हूँ....सुनते नहीं क्या ?"

"अच्छा, तो आप भूँकते हैं। तब तो मुझे आपकी आवाज़ ज़रूर पहचानना चाहिए !" वह कुछ अजीब जलन के साथ मुस्करा कर अपने कंधे पर बिखरे बालों को झिटकता है, और लौट पड़ता है।

"राजीव !" मैं चिल्ला पड़ता हूँ। चपरासी दौड़ा हुआ आता है, पर उससे क्या कहूँ....कहने के लिए तन-बदन चाहिए, मैं तो खुद ही अपनी आवाज़ की नोक पर चढ़ कर पिघल गया हूँ। मेरी आवाज़ शब्द बन गयी है—एक ठोस अर्थ।

स्पीकर चुप है, पर मेरे मन में टिन की पत्तरें कड़कड़ा रही हैं.... नकली बादलों की आवाज़, जो कभी मेरे लिए अर्थ नहीं रखती थी, पर इसने भी मेरे लिए रूप ले लिया है—शब्द की तरह अर्थ है इसका.... देख सकते हैं इसे; ओह, छू सकते हैं !

●